श्रीमद्भगवद्गीता

(मूल - सहित भोजपुरी - पद्यानुवाद)

शास्त्री सच्चिदानन्द त्रिपाठी
काव्यतीर्थ, विशारद

भोजपुरी

(भाव-भाषा में व्यञ्जित)

श्रीमद्भगवतद्गीता

(पद्य में)

—: अनुवादक :—

शास्त्री सर्वेन्द्रपति त्रिपाठी

काव्यतीर्थ, विशारद

साधनापुरी, पटना-१

सर्वेन्द्र प्रकाशन के द्वितीय पुष्प

प्रकाशक ☐ सर्वेन्द्र प्रकाशन
साधनापुरी, पटना-१
सर्वाधिकार ☐ प्रकाशकाधीन
कीमत ☐ तेरह रुपए पचास पैसे
मुद्रक ☐ कर्म प्रेस, लोदीपुर, पटना-१

पहिला संस्करण—१,०००
६ जून, १९७७

भोजपुर के हीरपुर ग्राम निवासी
अपना ससुर स्वर्गीय पंडित यदुनन्दन चौबे जी

अउर

स्वर्गीया सासु श्रीमती वसुमती देवी जी

का

पुण्य स्मृति में

अभ्यर्थना

भोजपुरी में भगवद्गीता ।
पढ़ीं पुस्तक परम पुनीता ॥
सारतत्त्व जीवन के एह में ।
आतमा जइसे बसे देह में ॥

—सर्वेन्द्र

आपन कथ

ई गीता अनमोल रत्न बा, अति रहस्यमय बड़ुए ग्रन्थ।
निमित्त ज्ञानप्राप्ति के बाटे, शास्त्ररूप में सुन्दर पन्थ।।

सभ वेदन्हि के सार भरल बा एही ग्रन्थ में कूट-कूट।
सभे वर्णधारिन्ह के बड़ुए एकर पाठ करे के छूट।।

अनमोल रत्न के जइसे होला आमद बड़ा कठिनता से।
ओइसे गीता का लक्ष्य के ज्ञानो होला स्थिरता से।।

जवन रूप में अबहीं तक बा गीताजी के भइल अनुवाद।
–बहुत अधिक ओ से ना मानव समाज के भइल उपकार अजस्र[1], अगाध।।

गीता के रचना कइला के रहे जवन उद्देश्य प्रधान।
ओकर पूर्त्ति भइल ना अवतक, जगत न कइलसि अमृत पान।।

एकर दोष न गीता के बा अउर न बाटे लेखक के।
२–संस्कारहीन सभे दोष के जरि में बाटे हीनभाव[2] उपदेसक के।।

जइसन बा उपदेश कृष्ण के तइसन दे उपदेशक ज्ञान।
ठीके में स्थिति आने होई, जनजन करि ली ओकर ध्यान।।

वर्णित गहन विषय के जवतक सूक्ष्मबीज के होइ न ज्ञान।
संभव कहाँ कबो बा समुचित होखी झट आदान-प्रदान।।

चाहीं कि बाल्यावस्था से सभ कोई का उर में देवे।
थोरे-थोरे बीज विषयगत जे विकसित खुद क्रम से होवे।।

चूँकि गीता के संस्कृत में समुझल सभ का सुगम न बा।
ए से ईश्वर का शिक्षा के समुझल पूरा सुलभ न बा।।

गीताजी का गूढ़ विषय के आशय के समुझावे हेतु।
सरल पद्य के आश्रय ले के बन्हले बानीं सुन्दर सेतु।।

जेकरा आश्रय से सभ तरीऽ गीताजी का गूढ़ता के।
आ विशेष कल्यानो होई भोजपुरी भाषी जनता के।।

अपना अल्प बुद्धि से संभव जवन रहे कुछु कइल सुबोध!
प्रतिपद्य के भाव प्रकाशन कइलीं जतना रहे प्रबोध।।

इच्छा प्रबल हमार इहे बा हिन्दी पढ़ल-लिखल सब लोग।
श्रीकृष्णोपदेश से समुचित लाभ उठावसु करि सुख-भोग।।

जो गीता के एह पाठ से होई लाभ कुछु पाठक के।
अन्य-२ समुझबि अपना हम धैर्य, परिश्रम, अथक यतन के।।

—सर्वेन्द्र

गीताजी के परिचय

(त्रिपाठी कौशल्या पाण्डेय, एम. ए.)

गीता के हम परिचय का दीं, तुच्छ ज्ञान बा सभ कुछु के।
डर लागत बा हमरे परिचय मिल ना जाये पाठक के॥

अतना कठिन विषय बा वर्णित कि हम बानीं खुद असमर्थ।
पूर्णरूप से सभ समुझे में ठीकै-ठीके समुचित अर्थ॥

तबहूँ सतत अभ्यास तथापि पिता प्रदत्त ज्ञान-अनुसार।
अल्प ज्ञान उपलब्ध भइल बा, जनले बानीं गीता-सार॥

ओही के अनुसार देत हम बानीं गीता के परिचय।
जे में बा सभ शास्त्र भरल आ चतुर्वेद के ज्ञान अक्षय॥

उक्त कथन के पूर्त्ति हेतु अब हर्ष होत बा ई लिखते।
"यस्मात्धर्ममयीगीता सर्वज्ञान प्रयोजिका
सर्व शास्त्रमयी गीता तस्माद्गीता विशिष्यते॥"

गीता के पढ़ला-बुझला से होले विदित ज्ञान के बात।
१–उत्पन्न, पैदा सब प्रकार के ज्ञानवृद्धि आ तत्त्वज्ञान होखे उपजात[1]॥

एही से प्रत्यक्ष सिद्ध बा गीता सभ शास्त्रन्हि से श्रेष्ठ।
पूर्णरूप से निहित एह में धर्म, कर्म अध्यात्म विशिष्ठ॥

नितदिन गीता के पढ़ला से भाव नया होला उत्पन्न।
चित सुस्थिर, अन्तः उर होला ईशभक्ति-श्रद्धा सम्पन्न॥

श्रीमद्भगवद्गीता नइखे सदुपदेश से कतहीं खाली।
२–महाभारत तब नू भारत[2] में व्यासो जी कहले बाड़े सूक्ति सुखाली[3]।
३–सुखद "गीता सुगीता कर्त्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता॥

परम पावनी गीता निकललि श्रीविष्णु का सरसिज मुख से।
एकरा के त अर्थ सहित अब करना बा चितधारण झट से॥

४–तति, आन शास्त्र के मनन-ततीं[1] के कवन प्रयोजन बा आगे !
विस्तार कर्म धर्म, अध्यात्मज्ञान के हेतुक गीता प्रिय लागे ।।

५–श्लोक ६८ से अंतिम अध्याय का श्लोकन[2] में स्वयं पद्मनाभ भगवान ।
७१ तक में गीता के माहात्म्य आदि के कइले बाड़े विशद बखान ।।

योगशास्त्र के विषय एह में वर्णित बाटे पूर्ण उत्तर ।
निरूपण बा ब्रह्मविद्या के आवश्यकता के अनुसार ।।

६–वर्णन ज्ञाननिष्टा के बा आख्यान[3] कइल गइल इहँवा सविशेष ।
७–पूरा कर्मयोग अवरु उपासना बाटे वर्णित विशद अशेष[4] ।।

प्रथम छव गीता-अध्याय में कर्मयोग के बा आख्यान ।
८–विशिष्टता दूसर छव में विस्तृत चर्चा बा उपासना के अधिमान[5] ।।

९–वर्णन, वृतान्त शेष छव में अंकित बाटे ज्ञान निष्टा के इतिवृत्त[6] ।
१०–बन्हल, कुल सात सइ श्लोक में गीता कइल गइल बाटे आवृत[10] ।।

घिरल ऊँच - नीच के भेदो कतहीं गीता में ना अंकित बा ।
११–अध्याय ९ चारो वर्ण के समाधिकार[11] पूजा हेतु प्रलक्षित[12] बा ।।
के श्लोक ३२ गीता में उपदेश मुख्य बा, आत्मा सभ में एक समान ।
आ १८ के मानव भा पशु - पक्षी अथवा कीट आदि के सम अधिमान ।।

श्लोक ४६ कर्मफलाशा तजि के जेहू कर्म करीऽ सभ सोचि - विचार ।
१२–विशेषरूप परमेश्वर में ध्यान लगा के करी अर्चना जे प्रति बार ।।

से निर्दिष्ट ज्ञानसिद्धि के प्राप्त करी ऊ, जन्म - मरण से होई मुक्त ।
ब्रह्मधाम में घर करि लीही, पाई सुमति, सुगति उपयुक्त ।।

जे कांक्षी बा अपना हित के, हो अज्ञान-निद्रा से मुक्त ।
श्रद्धा सहित निज धर्म समुझि के श्रवन, मनन आ पाठन युक्त ।।

निर्दिष्ट करी अभ्यास क्रमिक करि चित के एकाग्र सतत ।
निश्चय पाई परमेश्वर के साथे अपना लीन, निरत ।।

गीता के मर्यादा

(त्रिपाठी शारदा पाण्डेय, बा. ए.)

जन मानस के प्रीता,
अर्जुन - चित्त गृहीता,
तत्वसार अनरीता,
सूर्य सदृश जगमीता,
उच्चकोटि नयनीता,
गीता परम पुनीता ।।१।।

नीतिदायिनी शक्ति !
तोहरा में अनुरक्ति,
प्रतिजन के हो भक्ति,
बढ़े विश्व आसक्ति,
भागे दूर विरक्ति,
तोह में हो ससक्ति,
एकमात्र ई आशा,
पनपे वर अभिलाषा ।।२।।

●

गीता के दो मार्ग

त्रिपाठी मीरा मिश्र, एम. ए.

सभी वेद - शास्त्रों से बढ़ कर
महिमा भगवद्गीता की ।
जिसकी छाप पड़ी ससृति[1] पर
जैसे भू पर सीता[2] की ।।१।।
इस गीत में हृषीकेश ने
ईश - आप्ति के होने हेत ।
हैं बतलाए युगल मार्ग ही
कर्मयोग औ सांख्य समेत ।।२।।

(१) सांख्ययोग - साधक अपने ही
मन, इन्द्रिय, तन के द्वारा ।
होने वाले सभी कर्म के
कर्त्तापन से हो न्यारा[3] ।।३।।
रहते सदा प्रयत्नशील हैं
ईश्वर को ही पाने को ।
ऐसा करते वे केवल हैं
मोक्षमार्ग अपनाने को ।।४।।
इनक मन में भाव न होता
किसी अन्य के होने का ।
सच्चिदानन्द घन श्रीकृष्ण पर
अर्पित भार कर्त्तापन का ।।५।।
सांख्यमार्ग के अधिकारी हैं
देहाभिमान से दूर अधिक ।
क्योंकि अहंभाव होने पर
साधन संभव हो कब टीक ? ।।६।।

(२) सिद्धि-असिद्धि का ध्यान न करके

१—संसार
२—जोती हुई भूमि पर हल के फाल से पड़ी हुई रेखा
३—अलग

आसक्ति और फलेच्छा त्याग ।
ईशहेतु सब काम समुझ कर
उनमें ही रख कर अनुराग ॥६॥
तन, मन वाणी से अधीन हो
एकमात्र परमेश्वर के ।
चिन्तन करते सतत नाम-गुण
औ स्वरूप का ईश्वर के ॥८॥
यह लक्षण है कर्मयोग का,
साधन सुलभ, सुगम अत्यन्त ।
कर्मयोग के साधक होते
निष्कामी ही धीर, अनन्त ॥९॥

४—ईश्वर प्राप्ति

यद्यपि फल[४] इन दोनों का है
रहा सदा ही एक समान ।
किन्तु साधनकाल में दोनों
के पथ रहे अन्य ही अन्य ॥१०॥

५—कर्मयोग

साधन कर्म[५] का है असंभव
संन्यास के सन्मार्ग में ।
संभाव्य पर है सांख्यसाधन

६—योग या आश्रम

अन्यान्य सब ही मार्ग[६] में ॥११॥
द्विविधा न होनी चाहिए तब
मार्ग के चयनार्थ ही ।
है शक्ति एवं धारणा
आलंब एक यथार्थ ही ॥१२॥
जैसी रहेगी शक्ति औ
जैसी रहेगी धारणा ।
उस तरह के योग की ही

७—निश्चित परिणाम या निष्कर्ष

होगी निजी अवधारणा[७] ॥१३॥

कबहीं चित ना अघाय ।

गीता पुस्तक, पुस्तिका चाहे किताब ना ह । ग्रंथ ह, सद्ग्रंथ ह आ आर्ष ग्रंथ ह । पूजा-पाठ के चीज ह । गीता देव वाणी ह । देव-वाणिये में लिखलो गइल बा । कृष्ण के पूर्ण परात्पर ब्रह्म कहल जाला आ मानल जाला । समर-भूमि में कृष्णे जी का मुँह से निकलल बाणी के नाम गीता ह । वेद, शास्त्र आ उपनिषद निचोरि के कृष्ण जी गीता के वाणी बोलल बानीं ।

कृष्ण जो कहलीं तऽ अर्जुन से, बाकी सुनाई चारु ओर परल । जेकरा सुने के शक्ति रहल, सुनल आ धारण कइल, याद राखल । केहू सुनियो के भुला गइल । भुलाये वालन में धृतराष्ट्र रहले । संजय उनुका से सब समुझा के कहत गइले । ऊ सुनि-सुनि के भुलाइल गइले । याद कइले व्यास जी काहे कि 'मुनीनामप्यहं व्यास.' ।

फेनु कृष्णे जी श्री कृष्णद्वैपायन होके गीता के वाणी बुद्धि-विशारद मंगल-मूर्ति गणेश जी के सुनवलीं आ गणेश जी ओह वाणी के लौ लगा के सुनलीं अउर ओह पर बिचार कइके खूब सोचि समुझि के दुनिया के कल्याण खातिर लिखि दीहलीं ।

गीता में सात सइ श्लोक गिनल जाला । ऊ सब श्लोक में ब्रह्मे के वाणी नइखे । ओहमें अउर-अउर लोगनों के वाणी बा । एह से ऊ सब के सब वाणी गीते ना भइल । ऊ सब वाणी गीता के सहायक वाणी ह आ उपक्रम के वाणी ह । गीता तऽ पूजा के नूँ ग्रंथ ह । ऊ जहाँ से शुरु भइल बा, जहाँ समाप्त भइल बा, सम्पुटित कइ दीहल बा । गीता 'अशोच्य' से प्रारम्भ होके 'शुचः' पर विश्राम कइ रहल बा ।

अइसन जगत-पूज्य ग्रंथ के ठेकान नइखे कि आजु तकले कतने भाष्य कतने टीका आ कतने व्याख्या लिखा चुकल । संस्कृत, बंगला, अंग्रेजी, हिन्दी आ विरले कवनो अइसन भाषा रहि गइल होई जवना में गीता पर कुछ ना लिखाइल होई । बाकी प्रस्तुत गीता के ई टीका चाहे व्याख्या सरल-सुगम भोजपुरी भाषा में बा । भोजपुरी जनपद खातिर गौरव के बात बा कि गीता अइसन गहन-गंभीर विषय सहज-सुलभ होके भोजपुरी में आ गइल । एकरा खातिर भाष्यकार पं० सर्वेन्द्रपति त्रिपाठी के जतने बधाई दीहल जाउ, जतने धन्यवाद दीहल जाउ, जतने प्रशंसा कइल जाउ थोरे बा ।

भोजपुरी के प्रस्तुत टीका, व्याख्या आ भाष्य के ई खूबी बा कि श्लोको

के अर्थ गद्य में ना होके रुचिगर आ आकर्षक पद्य में बा जइसे 'मानस' के भाष्य 'विजय दोहावली' बा। भाष्यकार के प्रताप से मूलो ग्रंथ में कहीं कहीं चमक आ जाला। 'भाव-कुभाव अनख आलसहूँ' के खुलासा अर्थ समझा के भाष्यकार लिखत बाड़े—

भाव सहित शंकर जप्यो, कहि कुभाव मुनि बाल।
कुंभकरन आलसजप्यो, अनख जप्यो दस भाल॥

अइसहीं एह गीता के भाष्यकार त्रिपाठी जी एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमक्षुभिः' के अर्थ कतना स्पष्ठ कइके, समुझा के लिखि रहल बानीं—

अइसन समुझि सत युग में मनु जी द्वापर में ययाति यदुराय।
त्रेता में जनकादि नृपति गण सब मुमुक्षु के हो समुदाय॥
मोक्ष प्राप्ति हित सधले कर्म कर्म बन्ध में फँसले ना।
जानि मर्म निष्काम कर्म के ममता कबहूँ अँकले ना॥
एह से निज के कर्ता भोक्ता बिन मनले तू हे अर्जुन ?
कर्म करऽ निष्काम भाव से जगहिताय कुल्हि तज अवगुन॥

गद्य में अर्थ लिखि दीहल आसान काम बा। कड़ा काम बा पद्य के अर्थ पद्य में लिखल आ उहो अर्थ विस्तार के साथ लिखल। समुझा के लिखल आ उदाहरण दे के लिखल। जइसे गीता के पंक्ति बा 'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण कर्म विभागशः'। एकरा पर त्रिपाठी जी एह प्रकार से प्रकाश डालत बानीं आ साधारण जीवन तक पहुँचावे के कोशिश करत बानीं।

चारि वर्ण के सिरजन कइनीं गुण कर्म विभाग अनुसार।
ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के उनुकर उनुकर गुण अनुहार॥
शुद्ध सत्व पवलीं जेकरामें ब्राह्मण देलीं ओकर नाम।
सत रज के मिश्रण जेकरामें क्षत्रिय नाम रखलीं अभिराम॥
रज तम वाला लोग कहाइल वैश्य वर्ण के ऊत्तम धारी।
तम प्रधान ही पवलीं जहँवा शूद्रनाम धइलीं सुविचारी॥
अतना कइलो प तू अर्जून ! हम के शुद्ध अकर्ता जानऽ।
निर्विकार अव्यय अविनाशी फिन हमके तू कर्ता मानऽ॥

एक तऽ अनुवाद के काम असहीं बीहड़ काम ह। दोसर पद के पदे में अनुवाद कइल आ पूरा व्याख्या के साथ उदाहरण दे देके समुझावल ढेर परिश्रम के काम भइल। ऊपर से विषय के कठिनतो गीता में कम नइखे। गीता के

एगो कठिन विषय के त्रिपाठी जी कइसे हल कइले बानीं, झांकी लीहीं। श्लोक बा–

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणिच कर्म यः।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु युक्तः कृत्स्न कर्म कृत ।।

अर्थ चाहे व्याख्या—

देखे कर्म में जे अकर्म भा अकर्म में देखे कर्म।
ऊहे बुद्धिमान, योगी हऽ सबै कार्यरत, जानत धर्म ।।
इन्द्रिय कर्म के जे समुझे कि कर्ता एकर आत्मा बा ।
ईहे 'कर्म' में 'अकर्म' देखला के उदाहरण अच्छा बा।।
अध्याय दुइ में वर्णित बा कि सत रजतम का कारण से।
इन्द्रिय काम करेले आपन बिना रुकावट के दन से ।।
इन्द्रिय के गति रोकि सकी के ? बा समर्थ ई केकरा में?
आत्मा प्रेरित काम ओकर बा शक संदेह न एकरा में ।।
आत्मा कबहीं काम करेना अवरू ना छोड़ेला काम ।
तन इन्द्रिय सभ काम करेले, काम छोड़ि के करे अराम।।
बिन काम कइले आत्मा के जो कर्ता जाये समुझल ।
'अकर्म में कर्म देखला के' ईहे बा दृष्टान्त सुफल ।।
तीव्र यान में बइठल आदमी देखे कि बा चलते वृक्ष।
पर ई बात विपरीते जानऽ एह में ना सच्चाई कुछ ।।
फेनु, बहुत दूरि पर चलतो केहू, खड़ा लिखाई देत ।
एकर केवल कारण दूरी अउर अन्य ना बाटे हेत ।।
क्रमशः ई दूनों नजीर तऽ दूनों के बा पूर्ण समर्थक ।
इतर भाव ले आइल बड़ुए अर्जुन जानऽ पूर्ण निरर्थक ।।

साधारण संस्कृत के जानकारी राखेवाला लोगो गीता के पाठ करेला काहे कि ओकर संस्कृत सरल बा। बाकी ओकर समुझल संस्कृत के कतने विद्वानो खातिर दुरूह बा। अन्दाज अइसन बा कि ढेर लोग जे गीता पढ़िओ के ना समुझले होई उहो लोग एह भोजपुरी पद्यमय भाष्य भा व्याख्या से लाभ उठाई आ अपना के धन्य करी। अतना बोधगम्य बनावल गइल बा ई त्रिपाठी जी के व्याख्या। ई व्याख्या अक्षरे-अक्षरे शब्दन के अनुवाद ना ह। ई गीता के मर्म आ रहस्य के स्पष्टीकरण ह जवन विद्वान आ कवि भइला से ना हो सकी। होई जब मन, चित्त, आत्मा पवित्र होई, धर्म में अनुराग होई आ कवनो प्रकार के अहंकार ना होई। कहे के मतलब कि जिनिगी में जब गीता उतर गइल होई तबहीं गीता

के असली बात बुझाई आ लिखाई। त्रिपाठी जी के जिनिगी में गीता कूट-कूट के भरल बा तबहीं ई चीज लिखे के उनुका हृदय में प्रेरणा भइल हा।

बहुत पहिले के बात ह। एगो गीता के (अध्ययन) पाठ के सम्बन्ध में कहानी याद हो उठत बा। कहानी साच ह। रामनगर के महाराज काशी से एक दफे एगो गीता के विद्वान बोलवले। ऊनुका से ऊ गीता सुनले आ जाये के बेरा काफी दक्षिणा दे देले। पंडित जी तऽ दक्षिणा स्वीकार कइ ले ले। ई क्रम तीन हाली ऊ ओही पंडित का साथे जारी रखले। पंडित जी से अन्त में इहो कहि देले कि पंडित जी गीता समुझे के कोशिश करीं। तब पंडित जी दक्षिणा लवटा देले आ कहले कि श्रद्धा होखे तऽ विद्यालय में ई दक्षिणा के रकम दान कइ देबि। तब महराज कहले कि अब गीता रउरा आ गइल। ई रहस्य त्रिपाठी जी खूब अच्छी तरह से जानत बानीं।

त्रिपाठी जी संस्कृत के विद्वान हईं। भोजपुरी में कविता करे के उहाँ के लगन आ रुचि बा। अपना अपूर्व शक्ति के भरपूर प्रयोग कइ के भोजपुरी के भंडार उहाँ का भरि रहल बानीं संस्कृत के सद्ग्रंथन के अनुवाद से जइसे द्विवेदी जी हिन्दी खातिर कइले बानीं। एह तरह से उहाँ के ई सब कार्य बहुत सराहे लायक हो रहल बा। संस्कृत ग्रंथन के भोजपुरी पद्य में ले आइल बड़ा बड़ काम बा। एह से कविता में जे कुछु कमी देखाई देता ऊ सर्वथा क्षम्य बा। 'तत्सम' शब्दन के भरमारो क्षम्य एह से बा कि ई क्लिष्ट विषय के बहन करे में भोजपुरी के रसगर भाषा आ निम्नतर भाषा असमर्थ बिया। तबहूँ भोजपुरी के बारीकी जगह-जगह प व्याख्या में मिलत जात बा 'बिना रुकावट के दन से'। ई 'दन' शीघ्र के अर्थ में बा। बाकि भोजपुरी में 'दन' के अर्थ फिकिरियो-चिन्ता होला। भोजपुरी के स्वारस्य लोभी ललकत हृदय खातिर त्रिपाठी जी के निम्न उदाहरण कम ना होई। गीता के 'यत्सांख्यै प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते' के ऊपर

सांख्य योगवालन्हि के जे पद कर्म योगिन्ह के बा ऊहे।
दूनों के पद इइ न बड़ुए केहू कतनो गाहे-गुहे॥

'कतनो गाहे-गुहे' के मतलब 'कतनो हाथ पैर पटके', माथा पच्ची करे। हमरा थोरे में इहे कहे के बा कि जब युग के आन्ही में हमनी का अपना संस्कृति के भुलाइल जात बानी जा, त्रिपाठी जी हमरा प्राचीन संस्कृति के ध्यान में ले आवे खातिर अकथ परिश्रम कइ रहल बानीं। उहाँ के जतना रचना भोजपुरी साहित्य के ई रहल बानीं सब संस्कृत के उच्च कोटि के ग्रंथन के आधार पर

आधारित बा। भोजपुरी के अनमोल काव्य 'सत्यनिष्ठ हरिश्चन्द्र' अभी हाले में निकल चुकल बा। ई प्रस्तुत गीता के व्याख्यो भोजपुरी में आइए गइल। 'दुर्गा सप्तशती' के भोजपुरी पद्यानुवाद हो चुकल बा। स्त्रियोपयोगी ऋषि पचमी, तीज, बहुला आ 'जीवित पुत्रिका' व्रत के कथा बड़ा ललित भोजपुरी पद में पद्यबद्ध हो चुकल बा। ऊ देखि के हमरा अचरज भइल कि त्रिपाठी जीं सरस आ ललित भोजपुरी में कविता लिख सकत बानीं। उहाँ का कहलीं कि ऊ सभ रचना स्त्री वर्ग खातिर सहल सुगम बनावल गइल बा। ना त हम जानतँ रहली हाँ कि त्रिपाठी जी भोजपुरी के आचार्य केशव के समान कवि बानीं काहे कि 'मेघदूत' के रचना उहाँ का दसे पाँच दिन में लिख देले रहीं।

खाली व्रत त्योहार के रचना के अलावा और सभ रचना उहाँ के भोजपुरी के 'त्रिपप्रवास' अइसन रचना ह। हँ न, हमार प्रसंग ई बा कि त्रिपाठी जी गीता के भोजपुरी व्याख्या के माध्यम से ढेर पुरान-पुरान चीज याद करा दे ले बानीं। जइसे

सहस्र युगपर्यन्तमहर्यद् ब्रह्मणे विदुः।
रात्रिं युग सहस्त्रान्तां तेऽहो रात्रविदो जनाः ॥

एकर शास्त्रीय व्याख्या बूझीं--

एक हजार चौकड़ी युग के ब्रह्मा के होला एक दिन।
ईहे हाल रात के बड़ुए जे जानल से बा परबीन ॥
चारि लाख बत्तीस हजार के वर्ष प्रमाण बा कलियुग के।
एके दूना द्वापर के बा, कलि का तिगुना त्रेतायुग के ॥
चारिगुणा सतयुग के अर्जुन! भा सभयुग के जोड़ि धनंजय।
तेतालिस लाख बीस हजार वर्षमान बाटे कुल निश्चय ॥
युग अइसन हजार जब बीतीअउर रातियो ओइसनके।
तब दिन-रात एक, ब्रह्मा के आठ खरब चौसठ करोड़ के।
अइसन सइ करोड़ जबबीती तब ब्रह्मा के आयु परिमान।
एकतीस नील दस खरब आ चालिस अरब के होय सुजान।
एह अवधि के बीतलो पर जब ब्रह्मा के निश्चित बड़ुए अन्त।
कबनो लोक के बासिन के तब जीवन कइसे रही अनन्त?

सृष्टि के शास्त्रीय विधान एह किसिम के बा। नया लोग कहत बा कि सतयुग आवे वाला बा बहुत जल्दी। कुछु लोग त भगवान के अवतारो बता देत बा कि अमुक जगहा प हो गइल बा। आचार्य रजनीस के नाँव के पहिले

भगवान जोड़ा रहल बा। रजनीश जी कहत बाड़े कि कृष्ण भगवान ना हवे आ अपना नाँव के पहिले भगवान शब्द लागल देखि के मने-मन खुशी होत होइहन। एगो कहानी संग्रह भोजपुरी में अबहिये आइल हा 'हम कुन्ती ना हईं' कवनो कहानी के नायिका अभिमान के साथ ई बात कहत बाड़ी आ ओही बात प कहानी अधारित बा। कला के खूबी चाहे ओह रचना में जतना होखो बाकि कुन्ती भइल आसान काम नइखे। राम के रहले में एगो धोबी अपना मेहरारू से कहि दिहलसि कि हम राम ना हईं। बाकि ऊ धोबी राम से ना बढ़ि सकल। बड़ आदमी के निंदा कइके भी छोटका लोग आपन नाँव कमा लेला बाकि एह से बड़ के मर्यादा ना घटे।

एह गीता के व्याख्या में कहीं-कहीं त्रिपाठी जी समासी-करणो कइले बानीं आवश्यकतावश, जइसे—

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः॥
अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि॥

समासी करण—

अतः अकाट्य, निर्दह निराद्र अउर अशोष्य अव्यय महान।
अपरिवर्ती, अव्यक्त, अचिन्त्य के हेतुक शोक मति कर सुजान॥

एगो अउरी नजीर लीहीं—

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाऽहमहमौषधम्।
मंत्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम्॥
पितऽहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक्साम यजुरेव च॥

संछेप में—

हम क्रतु यज्ञ स्वधा ऋक् साम ऋचा सोमयजु मंत्र अगिन।
जगत पिता माता धाता आ बाबा प्रणव ज्ञातव्य अर्जुन॥

त्रिपाठी जी के 'व्यास-समास' व्याख्या के एक-दू नजीर दे के हम ई जाहिर कइ रहल बानीं कि भोजपुरी में अइसन साहित्यिक काम के कम महत्व नइखे। एह विषय के तरफ कम लोग नजरि रखले बा। हम भगवान कृष्ण

के शब्दन में त्रिपाठी जी के पुण्य के सराहना करत बानीं —

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भवि ॥

आ एकर व्याख्याकार के शब्दन से अउर लोगो के कल्याण चाहत बानीं कि उहो लोग पठन पाठन करो ।

जे उपदेश करे गीता के उनका से प्रिय अधिक हमार ।
एह भूमि प नइखे अर्जुन! कर्म करे वाला हुशियार ।।

त्रिपाठी जी के उमिरि ढेर हो चुकल बा । हम चाहत बानीं कि उहाँ का अउरू ढेर उमिरि के हो जाईं आ अपना कलम से सद्ग्रंथन के लिखि-लिखि के विषय-विमोहित जीवन के राह धरावत रहीं । लेखन के काम खातिर उहाँ के सभ साधन मौजूद बा । खाली पँर से उहाँ के जादे ना चलीं । जो जादे चले के शक्ति रहित त ई सब जवन लिखाई-पढ़ाई चल रहल बा उहो ना होइत । बइठाड़ू भइले से कविताई हो रहल बा, आ जगत के उपकारो हो रहल बा, भोजपुरी सत-साहित्य के भंडार भरि रहल बा ।

अउर लोग कहेला कि जबल भगवान राखसु तबले आंखि ठेहुन ठीक राखसु । हम कहींले कि जब तक रहे के बा बुद्धि जरुर ठीक रहे के चाहीं 'व्यवसायात्मिका बुद्धि' । बुद्धिये बिगड़ला प आदमी कहीं के ना रहे 'बुद्धिनाशत् प्रणश्यति' राम के सभ अंग ठीक रहे । बाकी जब आसुरी आक्रमण भइल त बुद्धिये बिगड़ि गइलि, सोना के मिरिगा बुझा गइल, बुद्धि के अपहरण हो गइल यानी सीता के अपहरण हो गइल । युधिष्ठिर महाराज बुद्धि के दावे यानी द्रोपदी के दावे प राखि देले । 'बुद्धि पदमिनि' के रतनसेन ले आइल रहले बाकि राखि ना सकले । हमार आदरणीय त्रिपाठी जी ठेहुना से कमजोर बानीं बाकि बुद्धि से एक दम ठीक बानीं । गीता के गूढ़ विषय तऽ किताब में सगरे भरले बा । हमरा लिखे के रहल हा व्याख्या के विशेषता जवन कतनो लिखला प अघाये लायक नइखे, 'जेकर बतिया सूनि के कबहीं चित न अघाय ।

आषाढ़ पूर्णिमा
सं० २०३४ वि०
भरौली, भोजपुर

—महेश्वराचार्य

बड़ बढ़ियाँ, बड़ नीक, बड़ सुन्दर, बड़ रसगर, बड़ सहज, बड़ सुगम उतरल बा राउर ई श्रीमद्भागवद्गीता के व्याख्या, भोजपुरी कविता में! एह रुचिगर व्याख्या का मजगर धार से 'गीता' का गहन-गुफा के बजर केवार तूरि-तारि के रउरा गजब कमाल कई देले बानीं। एह मोका प हमार हार्दिक बधाई स्वीकार करीं आ असहीं संस्कृत का अथाह समुन्दर में से नीमन-नीमन मूँगा-मोती ढूँढ़ि-काढ़ि के, गढ़ि-छीलि के भोजपुरी माई का आँचर में सजावल करीं।

'गीता' के पहिल गवनिहार भगवान कृष्ण से हमार अरज बा कि रउरा के अइसन काम करे लाएक बहुत दिन ले बनवले राखसु।

९-६-७७ —(आचार्य) सत्यनारायण लाल

□□

वैदिक संस्कृति आ साहित्य के मूल स्रोत वेदन में पावल जाला। उपनिषद ओकरा के वेदन का अपेक्षा कुछ सहज आ सुबोध बना के सामने राखल। जनमानस के देखत पुरानन में ओही भाव-भूमि के कुछ ओकरो ले अधिक रसगर बनावल गइल। गीता उपनिषद आ पुरान के नवनीत ह।

बाल्मीकीय रामायण आ गीता ई दूनों ग्रंथ भारतीयन के गौरव के रूप में बाड़न स। आदि से लेके अन्त तक राम के जिनगी समाज से लटपटाइल रहल आ कृष्ण के एगो अइसन योगमार्ग से जवना के सही-सही सभ लोग ना समझ सकल। ईहे वजह बा कि हमनिये के बीच के एह दूनों महापुरुषन के लोकोत्तर पुरुष का रूप में कल्पना कइलो प आजो विरोधियन के कमी नइखे। उत्तर भारत में राम के ईश्वर का रूप में मानल जाला, आ दक्षिण भारत में अइसनो जमात बा जे उनुका के भला बुरा कहे से बाज ना आवे। कृष्णो का बारे में कुछ अइसने बात बा। कृष्ण के बाहरी रूप अतना बिलासिता के बीच बखानल गइल बा कि उनुका बारे में लिखे के समय बरिसन पहिले महात्मा गांधी जी के संबंध में कुछ लोगन के अनैतिक टीका-टिपनी पढ़ि-सुनि के उनुके कलम से लिखल 'विश्वमित्र' में प्रकाशित लेख के मथेला प ध्यान सहजे खिंचा जाला—"मुझ पर कामुकता का दोषारोपण।"

बात जे होय भगवान् कृष्ण के उपदेश का रूप में कहल गइल गीता ओकर निर्वाद समाधान बा। गीता का बारे में लिखल एह पंक्ति के संबंध में दू राय नइखे हो सकत। "गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्र विस्तरैः।" सचहूँ गीता में हमनी के जिनगी के कवनो अइसन गीत नइखे जवन ना गावल गइल होय। गीता जिनगी के अनेक समस्यन के पूरा करे खातिर अकेले ग्रंथ बा। एक ओर गीता में जहाँ ई कहल जा रहल बा 'कर्मण्याधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' ओहिजे इहो कहल जात बा—मा कर्मफल हेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।' गीता के संपूर्ण योग हमरा जाने में कर्म प्रवृत्त करावे वाला बा बाकी ओह मार्ग से चलि के जवना से चलि के आत्म-कल्यान के साथ विश्व कल्यान होय।

अइसन मानव संदेशवाहक गौरव ग्रंथ गीता के भोजपुरी अनुवाद क के भोजपुरी के वरेण्य विद्वान् पं० सर्वेन्द्रपति त्रिपाठी जी उहे काम कइले बानीं जवन काम पाली, प्राकृत अपभ्रंश के विद्वान लोग ओह जमाना में सर्वसाधारण जनता के लाभ उठावे खातिर भगवान बुद्ध आ महावीर के उपदेशन के पाली आ प्राकृत में लिखके कइले रहलन। गीता के अनुवाद का पहिले त्रिपाठी जी के एगो प्रबन्ध काव्य 'सत्य-निष्ठ हरिश्चन्द्र' भी पाठकन के सामने आ चुकल वा। त्रिपाठी जी के देखि के इहाँ के सांस्कृतिक रूचि के सहजे अनुमान लगावल जा सकत बा। हम त्रिपाठी जी का मुँह से इहाँ द्वारा उलथल मेघदूतो के सुनलीं हाँ। उहो जल्दिए प्रकाश में आई। हमरा बड़ा खुशी हो रहल बा कि उहाँ के निगाह ओही-ओही ओर जा रहल बा जवन भोजपुरी जनपद खातिर अत्यन्त जरूरी बा। भोजपुरी के लोग खाली एगो सीमा के भीतरे यदि अपना के उलझवले रहिहें आ ओकरे के केन्द्र विन्दु बना के अगर साहित्य साधना करत रहिहें त जनजीवन के अपेक्षित कल्यान नइखे हो सकत। जरूरत त ई बा कि भोजपुरी साहित्य में ओकरा श्री वृद्धि खातिर भारतीय आ अभारतीय जवना साहित्य में सुधा कलश मिले ओकरा के लेके आपन साहित्यमंदिर सजाईं। हम त्रिपाठी जी के एह सेवा खातिर इहाँ के प्रति आपन सप्रणाम श्रद्धा समर्पित कर रहल बानीं।

११-६-७७

—डा० रामनाथ पाठक 'प्रणयी'
अध्यक्ष, प्राकृत आ पाली विभाग
जैन कालेज, आरा

□□

श्रीमद्भगवद्गीता संसार के कालजयी ग्रंथन के मुकुटमणि ह। कवनो भाषा के सम्पन्नता एह बात पर निर्भर रहेला कि ओकरा में कालजयी ग्रंथन के अनुवाद सुलभ बा कि ना।

भोजपुरी में लोकसाहित्य के एगो समृद्ध परम्परा कई एक शताब्दी से आ रहल बा लेकिन आजादी का बाद से एह भाषा में अब शिष्ट साहित्य के रचना के नया रुझान पैदा भइल बा। एह आठवाँ दशक में त 'अखिल भारतीय भोजपुरी साहित्य सम्मेलन' आ 'भोजपुरी अकादमी' के प्रकट भइला से भोजपुरी का साहित्य रचना में नया गति सामने आइलि बा।

शास्त्री पं० सर्वेन्द्रपति त्रिपाठी जी भोजपुरी के सधल कवि भी हईं आ समर्थ गद्यकार भी। इहाँ का मौलिक ग्रंथ के प्रणयन के साथ-साथ भोजपुरी में संस्कृत के कालजयी ग्रंथन के सामने रखे के जे महान अभियान अपना बलबता पर चला रहल बानीं, ओकर जतने बड़ाई कइल जाइ, ऊ थोरे बा। गीता के खूबी ई ह कि ओकरा में मानव-मस्तिष्क के सर्वोच्च ज्ञान बड़ा सरल, सधल, प्रांजल आ जोरदार भाषा में प्रकट कइल बा।

पं० सर्वेन्द्रपति त्रिपाठी जी गीता के जे ई भोजपुरी रूपान्तर प्रस्तुत कइले बानीं ओकर सबसे बड़ खूबी ई बा कि गीता के ज्ञान-सघन पंक्तिन के इहाँ का गीता के अनुरूप सरल, सधल, प्रांजल आ जोरदार भोजपुरी में परोस देले बानीं। गीता अइसन बरिआर दर्शन-ग्रंथ के अनुवाद एगो बहुत बड़ चुनौती ह। ओह चुनौती के श्री शास्त्री जी बड़ा खूबी से मजूर कइले बानीं आ अपना एह अनुवाद से भोजपुरी के खाली बरियार काव्य भावे का रूप में ना एगो मजबूत विचार-भाव का रूप में भी प्रतिष्ठित कइ देले बानीं। उहाँ के ई उपलब्धि अइसन बा जेकर कवनो दोसर तुलना जल्दी लउकत नइखे। हम एह सफल अनुवाद खातिर आपन हार्दिक बधाई उहाँ के देत बानीं।

११-६-७७

—रामेश्वर नाथ तिवारी
रीडर, हिन्दी विभाग
हर प्रसाद जैन कॉलेज आरा

□□

भोजपुरी काव्य-कुंज के सजावे-सँवारे में श्री सर्वेन्द्रपति त्रिपाठी जी के कलम जवना जोर-सोर में चलि रहलि बिया ओ के देखत ई

सहज अनुमान कइल जा सकेला कि ऊ दिन ढेर दूरि नइखे जब भोजपुरी अउरी-अउरी भाषा-साहित्य से कवनो माने में पाछे रहि सके। त्रिपाठी जी धुआँधार लिखि रहल बानीं—एक के बाद दोसर रचनन के पीड़ी लागे जा रहल बा। अभी 'सत्यनिष्ठ हरिश्चन्द्र' सोझा आइले रहे कि गीता के अनुवादो पाठक लोग का हाथ में आ गइल। मेघदूत, अभिज्ञान शाकुंतल, दुर्गासप्तशती आ एही तरह से संस्कृत के गौरव-ग्रंथन के ढेर अनुवाद, छपाई के डाँड़ी पर आ डटल बा।

भोजपुरी में त्रिपाठी जी उहे काम कइ रहल बानीं, जवन हिन्दी में आचार्य द्विवेदी जी कइले रहीं। हमरा समझ से इहाँ में भारतेन्दु आ द्विवेदी जी के दूनो सरूप एकठे मिलि के साकार भइल बा। 'गीता' भारत के सांस्कृतिक चिन्तन के एगो गुदुका ह। महाभारत के खूनसनल धरती पर भाई-भाई का अनेदेगी के फल के समाधान का होई? गीता के इहे उपदेश बा। कविवर त्रिपाठी जी ओह उपदेश के जनता के नगीच ले आवे खातिर जवन परयास कइले बानीं, ऊ बड़ाई के एकँछ अधिकारी बा—एह में कवनो दू राय ना हो सकी।

ईश्वर से हमार विनती बा कि त्रिपाठी जी लमहर आ सुखी जिनिगी पाई, जवना से भोजपुरी के मजिगर सेवा हो सके।

१२-६-७७

—सर्वदेव तिवारी 'राकेश'
हिन्दी विभाग,
महाराजा कालेज, आरा

□□

भोजपुरी भाषा के प्राणवत्ता के हू से छिपल नइखे। एह भाषा अउर एकरा बोलेवाला के विशेषता के समुझिये के ग्रीयर्सन साहब अपना लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इन्डिया में "भोजपुरी इज द लैंग्वेज ऑफ द विराइल" अइसन विचार व्यक्त कइले। श्रीमद्भगवद्गीता अइसन श्रेष्ठ ग्रन्थ के भोजपुरी में अनुवाद क के सर्वेन्द्रपति त्रिपाठी जी उक्त भाषा के क्षमता अउर संभावना के प्रमाणित क दिहनीं, साथ ही साथ एक बहुत बड़कन यज्ञ पूरा कइनीं तथा भोजपुरी के भंडार के समृद्ध बनवनीं।

श्रीमद्भगवद्गीता के अनुवाद करे खातिर खाली भोजपुरिये के ही जानकार भइल आवश्यक नइखे। एकरा खातिर संस्कृत के पंडित भइल बहुत जरूरी बा। त्रिपाठी जी संस्कृत आउर हिन्दी के गम्हीर पंडित हईं। भोजपुरी त इहां के घर के मुरगी दाल बराबर बा।

साहित्य-सर्जन का दिशा में इहाँ के ई पहिला प्रयास ना ह। कई ग्रन्थन के रचना कइला का बाद इहाँ का गीता के अनुवाद में हाथ लगवलीं, आ एहू के पूरा क दिहनीं। अइसन उत्साही अउर कलम बरियार आदमी यदि कवनो क्षेत्र में दस पाँच मिल जासु त कइसनो महाभारत जितल जा सकेला।

एह कृति के प्रणयन खातिर त्रिपाठी जी सगरी भोजपुरी समाज के धन्यवाद के पात्र बानीं। भोजपुरी समाज अइसन महारथी पर गरव कर सकेला। भगवान इहाँ के स्वास्थ्य अउर दीर्घायु बनवले राखीं।

—हरिप्रपन्न द्विवेदी
अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
बिहार नेशनल कालेज
पटना विश्वविद्यालय

□□

देववाणी अइसन प्रांजल आ परिष्कृत भाषा 'भोजपुरी' में रचल ज्ञान-प्रदाता एह धर्मग्रन्थ के आदि से अन्त तक पढ़ि गइलीं, आ वर्णित सभे विषय के अइसन सुन्दर ढंग से सजल-सँवारल पवलीं कि मन गद-गद हो गइल। अइसे त भोजपुरी भाषा अतना मधुर, ललित आ सरल ह कि कवनो अन्य भाषाभाषियो का एकरा के साफ-साफ समुझे में देरि ना लागे, अउर एकर भूरि-भूरि प्रशंसा कइलो बिना केहू का रहियो ना जाई। कास, कुतूहलवश एह ग्रन्थ के आद्योपान्त पढ़े के हमरा अवसर ना मिलल रहित त5 हम अपना जीवन के निरर्थक समुझितीं।

खैर, गीता के मूल श्लोकन के व्याख्या जवना रूप में कइल गइल बा ऊ अत्यन्त बोधगम्य भइला का कारण अभिनंदनीय बा, सराहनीय बा। 'नानाजी' का लेखनी के लोहा भोजपुरी जनपद त जरूरे मानी एह में कवनो सन्देह नइखे। श्रीमद्भगवद्गीता के हिन्दी आ अंग्रेजी भाषा में अनुवाद पढ़े के हमरा एकरा पहिले अवसर मिलल रहे जरूर बाकी ओह अनुवादन से हमरा विषयवस्तु के ज्ञान ओह रूप में कदापि ना भइल रहे जवन एह भोजपुरी भाषा में अनूदित ग्रंथ से भइल। आशा बा कि जे केहू एह पुस्तक के पढ़ी ओकरा गीता के सुन्दर ज्ञान अवश्य प्राप्त होई।

उमीद बा कि एह सिद्धहस्त लेखनी से जल्दिए अउरू ग्रंथ लिखइहें स जतना से भोजपुरी के आँचर आ झोरी भरे में देरि ना लागी।

—कुमारी वीणा चौबे, एम० ए०
सर्वेन्द्रपुरी, बाबू बाजार
पटना-२

१७-६-७७

□□

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥

श्रीपरमात्मने नमः

प्रथमो अध्यायः

सूनीऽ रउआ आजु सब, गीताजी के बातऽ।
जेकर बतिया सूनि के, कबहीं चित न अघात ।।

धृतराष्ट्र उवाच

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय ।।१।।

पूछले धृतराष्ट्र संजय से बोलऽ
धर्मभूमि कुरुखेत में जा के।
जूझि करे खातिर बिटुरल सभ
कुरु-पाण्डव का कइले बल[1] पाके ।।२।।

१—सेना, शक्ति

संजय उवाच

दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा ।
आचार्यमुपसंगम्य राजा वचनमब्रवीत् ॥२॥

कहलो संजय,—राजा दुर्योधन
सजल देखि सेना पाण्डव के ।
बोललें विनतिभाव से धीरे
आचार्य द्रोण के सन्मुख जा के ॥२॥

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम् ।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥३॥

द्रुपद के लइका धृष्टद्युम्न जी,
राउर चेला चतुर सुजान ।
पाण्डव सेना के बड़ रूप दे
अगुआ बाड़े खुदे महान ॥३॥

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुन समायुधि ।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥४॥

अर्जुन-भीम अइसन धनुधारी
शूरवीर रणरतन अनेक ।
सेना में तत्पर द्रुपद महारथी,
विराट, सात्यकि अउर कतेक ॥४॥

धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान् ।
पुरुजित्कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुङ्गवः ॥५॥

शिशुपालपुत्र श्री धृष्टकेतु आ
यादववंशी श्री चेकितान ।
कुन्तिभोज के लइका पुरुजित,,
शैव्य, काशीराज बलवान ॥५॥

युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान् ।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ॥६॥

युधामन्यु बल खानि तेजस्वी,
ओसहीं उत्तमौजा बलवान ।
पाँचो पुत्र द्रुपदजा के अरु
महारथी अभिमन्यु महान । ६॥

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम ।
नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते ॥७॥

हमरा ओरि जे जे प्रधान वा
उनुको नाम के कृपानिधान !
उचित ध्यान दे सब सुनि लीहीं
वरब्राह्मण कुलश्रेष्ठ महान ! ॥७॥

भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिंजयः ।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च ॥८॥

खुद रउआ, कर्ण, भीष्मपितामह,
रणजेता कृपाचार्य बलवान ।
सोमदत्त के पुत्र भूरिश्रवा,
अश्वत्थामा, विकर्ण प्रधान ॥८॥

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थेत्यक्त जीविताः ।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥९॥

अउरू बहुते शस्त्रविशारद,
युद्धकला में परम प्रवीन ।
हमरा खातिर जान देवे पर
बाड़े तत्पर खड़ा अधीन ॥९॥

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥१०॥

भीष्म पितामह से अभिरक्षित
१—सेना बल[1] हमार बा पूर्ण अजेय ।
२—पाण्डव के स्वयं भीमरक्षित बल उनुकर[2]
सुगम रूप से बड़ुए जेय ॥१०॥

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः ।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एवहि ॥११॥

एह से उचित प्रतीत होत बा
सब मोर्चा प जगह लेइ के ।
निस्सन्देह रउआ सभ रक्षा
करि अब भीष्मपितामह के ॥११॥

तस्य संजनयन्हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः ।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शंखं दध्मौ प्रतापवान् ॥१२॥

दुर्योधन के हर्ष जगावत
फूँकले भीष्मपितामह शंख ।
सिंहनाद अइसन सुनि गर्जन
दहलि गइल जन-उर असंख्य ॥१२॥

ततः शंखाश्च भेर्यश्च पणवानक गोमुखाः ।
सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥१३॥

सहसा ढोल, मृदंग, शंख अरु
पणव, नगारा बाजल अउर ।
शब्द भयंकर नभ में व्यापल
३— ठौर, जगह रहल न बाकी कवनो ठवर[3] ॥१३॥

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ ।
माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौशंखौ प्रदध्मतुः ॥१४॥

४—उजला

तब सित[4] घोड़ायुत रथ बइठल
केशव-अर्जुन फूँकले शंख ।
अइसन शब्द भयावह भइल
मनु, गति में हो लागल पांख ॥१४॥

पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः ।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशंखं भीमकर्मा वृकोदरः ॥१५॥

पाञ्चजन्य के हृषीकेश जी
देवदत्त के अर्जुन वीर ।

५—भयानक कर्मकर्ता भीम

पौण्ड्रशंख के भैरवकर्मी[5]
भीम वृकोदर फूँकले धीर ॥१५॥

अनन्तविजयं राजा कुन्तिपुत्रो युधिष्ठिरः ।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥१६॥

कुन्तिपुत्र महाराज युधिष्ठिर
फूँकले शंख अनन्त विजय ।
नकुल अउर सहदेव बजवले
सुघोष अउर मणिपुष्प अजय ॥१६॥

काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः ।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः ॥१७॥

द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते ।
सौभद्रश्च महाबाहुः शंखान्दध्मुः पृथक्पृथक् ॥१८॥

धनुधारी काशी के राजा
अउर शिखण्डी वीर महारथ।
धृष्टद्युम्न, राजा विराट अरु
अजेय सात्यकि विपुलबली अथ ॥१७॥

द्रुपद तथा नाती सब उनुकर
पाँचो पुत्र द्रुपदजा के।
विशालबाहु अभिमन्यु वीरो
फूँकले शंख अलग जाके॥ ८॥

स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत्।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन् ॥१९॥

६—कोलाहल-कारी
७—पुत्र

घोर भयावह हौराकारी[6]
शब्द गूँजि नभ-भूतल पर।
महाराज धृतराष्ट्रसुवन[7] के
हृदय बिदरलसि अति प्रलयंकर ॥१९॥

अथ व्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान्कपिध्वजः।
प्रवृत्ते शस्त्रसम्पाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः ॥२०॥

हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते।
अर्जुन उवाच
सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ॥२१॥

शस्त्र चलावे खातिर तत्पर
लखि के कौरव भाइन्हि के
कपिध्वज अर्जुन धनुष उठाके
सन्मुख होके शत्रुन्हि के ॥२०॥

कहले महाराज केशव से
विनतिभाव से सब प्रत्युत।
८—मध्य उभयपक्षी सेना के मध[8] में
खड़ा करीं रथ हे अच्युत! ॥२१॥

यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान्।
कैर्मयासह योद्धव्यमस्मिन्रण.समुद्यमे ॥२२॥

योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः।
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ॥२३॥

तबतक खड़ा-खड़ा हम देखत
बानीं युध करवैया के।
अवरू केकरा साथ उचित बा
९—निर्भय, जे अब भाई समान नइखे लड़ल हमार अभैया[9] के ॥२२॥

आगे देखल चाहत बानीं
कहाँ-कहाँ के राजालोग।
दुर्बुद्धि दुर्योधन के हित-
१०—तरह-तरह के ११—उपाय खातिर रचिहें नाना[10] योग[11] ॥२३॥

संजय उवाच

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत।
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥२४॥

भीष्मद्रोण प्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम्।
उवाच पार्थ पश्यैतान्समवेतान्कुरूनिति ॥२५॥

१२—गुडाक। ÷ ईश अर्थात् नींद-विजयी अर्जुन

गुड़ाकेश[12] अर्जुन के वाणी
सुनि के हृषीकेश भगवान।
—भीष्म द्रोण आदि के सन्मुख
झट खाड़ कइले रथ आन[13] ॥२४॥

१३—ला करके

कहले पार्थ! वीर तू देखऽ
कौरव दल के लोगन्हि के।
नृप, नरेश, राजा महाराजा
भिन्न-भिन्न ही देशन्हि के ॥२५॥

तत्रापश्यत्स्थितान्पार्थः पितॄनथ पितामहान्।
आचार्यान्मातुलान्भ्रातॄन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा ॥२६॥

श्वशुरान्सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि।
तान् समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान्बन्धूनवस्थितान् ॥२७॥

कृपया परयाऽऽविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत्।

अर्जुन उवाच

दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम् ॥२८॥

वचन सूनि भगवान कृष्ण के
देखले पृथापुत्र अर्जुन।

१४—सेना

उभय अनी[14] में खड़ा पितामह
चाचा, काका, मामा, पौत्रन ॥२६॥

भाई, पुत्र, आचार्य, मित्र अरु
ससुर, सुहृदगण के जमघट।
लागल रहेऽ कुरुक्षेत्र में
आगे, पीछे इत-उत हुट ॥२७॥

सब के देखि विह्वल करुणा से
शोकयुक्त कहले अर्जुन।
युध अभिलाषिन्ह के लखि लखि के
१५ समय, अवसर चित थिर नइखे कृष्ण ! एह जून [15]॥२८॥

सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ॥२९॥

शिथिल अङ्ग, मुख सूखत जाता
काँपत बड़ए अधम शरीर।
रोआँ रोआँ के सिहरन से
चित, मानस बा भइल अधीर ॥२९॥

गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ॥३०॥

गिरत जात गाण्डीव हाथ से,
जलन देह में बढ़ती पर।
मन में चक्कर के चढ़ती बा,
पैर न ठहरत धरती पर ॥३०॥

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥३१॥

लक्षण भी सब देखि पड़त बा
उलटा-पुलटा हे केशव !
अपना जन के मारि युद्धि में
कहाँ श्रेय भा कहाँ विभव ! ॥३१॥

न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि न ।
किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा ॥३२॥

चाह तनिक ना जीत, विजय के
राज्यलोभ वा क्षीण प्राय ।
सुख हो, कांक्षा कहाँ कहीं वा ?
१६—अनिच्छित राजभोग सब निःस्पृह[16] प्राय ॥३२॥

येषामर्थे कांक्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च ।
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ॥३३॥

जेकरा खातिर राजभोग, सुख
१७—अभिलाषित इप्सित[17] बाटे हे मधुरेश !
ऊ लोग धन, जान त्यागि के
युद्ध हेतु तत्पर हृषीकेश ! ॥३३॥

आचार्यः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः ।
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः संबन्धिनस्तथा ॥३४॥

गुरुजन, ताऊ, पुत्र, पितामह,
मामा, पौत्र, ससुर, शाला ।
चाचा आदिक अउर हितैषी
१८—प्रसन्न समरक्षेत्र में खड़ा निहाला[18] ॥३४॥

एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन ।
अपि त्रैलोक्य राज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते ॥३५॥

तीनि लोक के राज्या खातिर
हम ना इनपर हाथ उठाइबि ।
बाटे गिनती कहाँ धरा के ?
मारसु ई जो मारो खाइबि ॥३५॥

निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन ।
पापमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः ॥३६॥

भाइ-बन्धु के मारि भला कब
लाभ-प्रीति कुछु हो पाई ।
अतताइन्हि के मरलो पर तऽ
पापे नु हाथ भेटाई ? ॥३६॥

तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्तराष्ट्रान्स्वबान्धवान् ।
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव ॥३७॥

एह से नइखे इच्छा इचिको
मारीं हम इन लोगन्हि के ।
इनका मारि हम भागी होखबि
केवल मात्र प्रलोभन के ॥३७॥

यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहत चेतसः ।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ॥३८॥

कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम् ।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥३९॥

लोभी कौरव भले न समझसु
कुलक्षय-मित्रद्रोह के दोष ।
हम त सब कुछ समुझत बानीं
एह से रहबि सदा निर्दोष ॥३८-३९॥

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः ।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ॥४०॥

कुलक्षय भइला के कारन से
हो कुल धर्म सनातन नष्ट ।
धर्म नष्ट भइला पर निश्चय
कुल के पाप दबावे स्पष्ट ।।४०।।

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः ।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः ।।४१।।

पाप बढ़न्ती के कारन से
कुल के तिरिया दूषित होय ।
वर्ण - संकरे उत्पन्न होला
१६—स्त्री जो हो दूषित कुल के जोय[19] ।।४१।।

संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ।।४२।।

कुलघाती, कुल, दूनों के तऽ
होय नरक संकरता से ।
पिण्डदान अवरू तर्पण के
पितर न पावसु स्थिरता से

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ।।४३।।

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन ।
नरके नियतं बासो भवतीत्यनुशुश्रुम ।।४४।।

एही कारन कुलघातिन्ह के
होय विनष्ट कुल-जाति धरम ।
नित्य जाति, कुलधर्म विनशते
नरकवास हो,-सुनल मरम ।।४३-४४।।

अहोवत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम् ।
यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः ॥४५॥

सोचीं रउआ स्वयं जनार्दन !
विज्ञ, विशारद होके हम ।
राज अउर सुखलोभे खातिर
सोचत बानीं कर्म अधम ॥४५॥

यदि मामप्रतिकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः ।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेममरं भवेत् ॥४६॥

उचित त ईहे लउकत बा कि
शस्त्रत्यागि दीं, रहीं निरस्त्र ।
प्रतिकारिता तिलाञ्जलि पावे
कौरव छोड़सु हम पर अस्त्र ॥४६॥

एवमुक्त्वाऽर्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत् ।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ॥४७॥

रणभूमि में अइसन कहिके
शोकग्रस्त हो के अर्जुन ।
बाणसहित धनु त्यागि बइठले
रथ में पीछे ओही जून ॥४७॥

—::०::—

द्वितीय अध्यायः

सूनी रउआ सभनी अब
द्वितीय अध्याय के बात
१—सांख्य योग आ कर्मयोग — सांख्य[1]-कर्म बा वर्णित एह में
सुनि के चित्त-हृदय जुड़ात ।।

संजय उवाच

तं तथा कृपयाऽऽविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ।।१।।

दयाव्याप्त, अँखियन में आँसू,
शोक - समुद्र में डूबल ।
कुन्तिपुत्र अर्जुन के लखि के
२—नीति — कहले कृष्ण,-हे नयनिर्बल[2] ! ।।१।।

श्री भगवानुवाच

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ।।२।।

अइसन विषम घरी में तोहरा
मोह भइल उत्पन्न कइसे ?
जवन अकीर्तिकर, अधोपथी बा
सज्जन ना आचरले अइसे ।।२।।

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप ॥३॥

नामर्दी के आश्रय मति दऽ
तोहरा में ना शोभा देत ।
मर्म-स्थल के तजि दुर्बलता
झट उठऽ परन्तप ! रक्ख[3] खेत ॥३॥

३—विजय प्राप्त करऽ

अर्जुन उवाच

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन ।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥४॥

बात सूनि के मधुसूदन के
कहले पार्थ,—हे कृपानिधान !
पूज्य भीष्म आ द्रोणाचार्य के
साथे रण में लड़ल अमान ॥४॥

गुरूनहत्वा हि महानुभावान्
श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके ।
हत्वाऽर्थकामांस्तु गुरूनिहैव
भुञ्जीय भोगान् रूधिरप्रदिग्धान् ॥५॥

महानुभाव गुरुजन के हतला
ले अच्छा वा भिक्षाटन ।
अर्थलालची गुरुजन के हति
अर्थभोग के नइखे मन ॥

आखिर अइसन कइला पर तऽ
एही लोक में मधुसूदन !

उनका रक्त से रंजित भोगऽ
भोगे पड़ीऽ दैत्यनिसूदन ! ॥५॥

न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो
यद्वाजयेम यदि वा नो जयेयुः ।
यानेव हत्वा न जिजीविषाम-
स्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः ॥६॥

कौरव जीतसु रण में हम के
भा जीतीं हम उनका के ।
ई दूइ में कवन श्रेयस्कर !
पता कहाँ बा ईहो हमके ॥

जिनका के हति जीयल हम तऽ
चाहत नइखीं एको क्षन ।
ऊहे सन्मुख युद्धक्षेत्र में
दीखत बाड़े भाई-जन ॥६॥

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मं सम्मूढ़चेताः ।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधिमां त्वां प्रपन्नम् ॥७॥

दैन्यदोष से नष्टवृत्ति आ
धर्मविषय में मोहित चित ।
पूछत बानीं, हमें बता दीं
का श्रेयस्कर अउर उचित ॥७॥

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्
यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम् ।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं
राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ॥८॥

हो भले समृद्ध राज्य के प्राप्ति,
भा देवराजत्व उपलब्ध ।
कवनो साधन देखत नइखीं
जवना से हो शोक निरुद्ध ॥८॥

संजय उवाच

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परन्तपः ।
न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह ॥९॥

४—पूछताछ परिपृच्छा[4] करि हृषीकेश से
अउर बोलि कि लड़बि ना हम ।
शोकित गुडाकेश अतिचिन्तित
५—चुप हो गइले शान्तभाव से खींचले[5] दम ॥९॥

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः ॥१०॥

६—मौजूद, उपस्थित उभय अनी के बीच अवस्थित[6]
मौनव्रती शोकित अर्जुन से ।
कुछ हँसिए के कहले केशव
झट पृथापुत्र पाण्डव से ॥१०॥

श्री भगवानुवाच

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ।।११।।

जेकर शोक ना कइल चाहीं
ओकर शोक करत बाड़ऽ
पंडित अइसन कथनी कहि के
ज्ञानसुधा के आंकत बाड़ऽ
बाकी पण्डित मरला - जियला
खातिर सोचे ना कबहीं ।
नष्ट शरीर या स्थित शरीर
समझे दूनों के सम हीं ।।११।।

न त्वेवाहं जातुनासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।
न चैव भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ।।१२।।

आत्मा नित्य जब, शोक व्यर्थ बा,
जीयल-मूअल नियम अबाध ।
कबहूँ मति सोचिहऽ कि पहिले
रहल जीव के जीवन बाध ।।
जे आइल बा, जाई निश्चय,
जाई से आई निश्चय
तू, हम, राजा भा महाराजा
जे आई, जाई निश्चय ।।१२।।

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ।।१३।।

देखऽ जइसे हर शरीर में
तीनि अवस्था आवतजात ।
ओसहीं हर शरीर के क्रम बा,
आवत अउर रही बिलगात ।।१३।।

मात्रास्पशस्तिु कौन्तेय शीतोष्ण सुख दुःखदाः ।
आगमापायिनोनित्यास्तांतितिक्षस्व भारत ।।१४।।

सर्दी-गर्मी, सुख-दुख दूनों
इन्द्रियजनित अवस्था जे ।
अउर विषय संयोग -पल्लवित
इनकर बाटे मात्रा जे ।।
सदा अनित्य आ क्षणभंगुर बा
सहन करऽ इनका के वीर !
शोक समुद्र के तरि जा झट से
तू पुरुष धीर-गम्भीर ! ।।१४।।

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ।
समदुःखसुखं धीर सोऽमृतत्वाय कल्पते ।।१५।।

जवना सुख-दुख समदर्शी के
इन्द्रिय विषय ना करे विकल ।
ऊहे धीर पुरुष सक्षम बा
मोक्षप्राप्ति के जग में केवल ।।१५।।

नासते विद्यतो भावो नाभावो विद्यते सतः ।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ।।१६।।

सत् नाम से ऊच्चरित आत्मा,
असत् नाम से अधम शरीर
दूनों खातिर तब चिन्ता के
नइखे कबहीं स्थान सु-बीर ।।
आत्मा अमर भा कहऽ नित्य बा,
देह अनित्य भा मर जानऽ ।
पहिला सदा रहल आ रहीऽ
दूसर बा क्षणभंगुर मानऽ ।।

आइल-गइल एही देहि के
गाड़ी के पहिया अइसन ।
कबहीं नीचे कबहीं ऊपर,
शोक करे के तब कइसन ? ।।
तत्त्वदर्शीगण एह से कहले,—
असत् के नइखे कुछ, अस्तित्व ।
सत् के कहाँ अभाव कहीं वा ?
शाश्वत बाटे[७] एकर स्थित्व ।।१६।।

७—नित्य, सदा रहेवाला

अविनाशी तु तद्विद्धि येनसर्बमिदं ततम् ।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित् कर्तुमर्हति ।।१७।।

जानऽ आत्मा के अविनाशी,
एकरा से बा व्याप्त जगत ।
एह नित्य अथवा अव्यय के
होई न कबहीं नाश सुचित ! ।।१७।।

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः ।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ।।१८।।

किन्तु ब्रह्म भा जीवात्मा के
सब शरीर बा नाशवान् ।
एह से उठि के युद्ध कर तू
हे भरतवंश के वीर्यवान् ।।१८।।

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ।।१९।।

जे समझे कि आत्मा मर वा
अथवा करेला ईहे मार ।

दूनों गलत, न मरल न मरलसि
सत्य इहे बा जग उजियार ।।१९।।

न जायते म्रियते वा कदाचित्
नायं भू त्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ।।२०।।

जन्म-मरण से सदा रहित ई
चाहे कवनो होखे काल ।
शाश्वत, नित्य, अजर, अजन्मा,
देहि नष्ट, ई रही बहाल ।।२०।।

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् ।
कथं स पुरुषः पार्थं कं घातयति हन्ति कम् ।।२१।।

जे जानल आत्मा के अइसन
ऊ कइस मारी, मरवाई !
चाहे केहू के शरीर हो
नाशवान् बा निश्चय भाई ।।२१।।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जिर्णा—
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ।।२२।।

जइसे जीर्ण वस्त्र के तजि के
व्यक्ति करेला ग्रहण नवीन
ओइसे ब्रह्म जीर्ण देहि के
छोड़ि गहेला अर्वाचीन[8] ।।२२।।

८—आधुनिक, नया

नैनं छिदन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ।।२३।।

एह ब्रह्म, अव्यय, आत्मा के
काटि सकी ना कबहीं शस्त्र ।
आगो कबहीं जरा न पाई
भिंजवो करी न जइसे वस्त्र ।।
मारुत-वायु-पवन-हवाऽनिल
सुखा न एकरा पाई जी !
जे बा शास्वत आ अविनाशी
कवनो विधे न जाई जी ? ।।२३।।

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ।।२४।।

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ।।२५।।

अतः अकाट्य, निर्दह, निरार्द्र
अउर अशोष्य, अव्यय, महान ।
अपरिवर्ती, अव्यक्त, अचिन्त्य के
हेतुक शोक मति करऽ पुमान ।।२४-२५।।

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् ।
तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि ।।२६।।

मनबो करऽ कि आत्मा अनित्य बा,
देहि साथ बा आना-जाना ।
तबहूँ सोचऽ महाबाहु तू
शोक विषय बा कहाँ बनाना ? ।।२६।।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ।।२७।।

जात के मृत्यु निश्चित बा जब
मृतक के जन्मो निश्चित बा ।
एह दूनों अनिवार्य स्थिति में
आखिर शोक कइला में का ? ।।२७।।

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ।।२८।।

जन्म के पहिले देहि शून्य बा
मरला बादो बा ओसहीं ।
केवल मध्यकाल में तन बा
तऽ कहाँ शोक के स्थान कहीं ? ।।
जे बा आपन या अनकर,
बा सब माया के संसार ।
भीष्म, द्रोण आदिक ना पहिले
रहसु, न रहिहें फेनु तहार ।।
जे बा सबही स्वप्नतुल्य बा ।।
बाबा, बबू, वनिता, वित्त ।
ई सृष्टिए जब नाशवान् बा
तब का सोचल शत्रु या हित ।।२८।।

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनं
आश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः ।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति
श्रुत्वाऽप्येनं वेद न चैव कश्चित् ।।२९।।

आत्मतत्त्व तऽ विषय गहन बा,
अचरज देखि करे केहू,
केहू वर्णन करे अचम्भा,
श्रोतो के गति बा एहू
सुनियो के कुछ जानि न सकले
एकर मर्म हे पार्थ ! यथार्थ।
अतः पूर्ण विचारि के समझऽ
शोक कइल बा बिलकुल व्यर्थ ।।२९।।

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ।।३०।।

सब शरीर के वासी आत्मा
सदा अवध्य बा जानऽ ठीक ।
केकरो खातिर चिन्ता, शोक तब
मानऽ बाटे पूर्ण अलीक[9] ।।३०।।

९—झूठ, व्यर्थ

स्वधर्मपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ।।३१।।

फेनु धर्म के ओरि विचारऽ,
हिम्मत हारि मति बइठ अब ।
धर्मयुक्त युद्ध से बढ़ि के
कवन श्रेयस्कर बा करतब ? ।।३१।।

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम्।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ।।३२।।

स्वयं प्राप्त सुसमय में अर्जुन !
ई युद्ध वा स्वर्ग के द्वार ।
भाग्यवान् क्षत्रिय का होला
एकर प्रापति भरत कुमार ।।३२।।

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्राम न करिष्यसि ।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि ।।३३।।

एह से धर्म अनुकूल अगर
ई धर्मयुद्ध तू ना करबऽ ।
तब स्वधर्म आ कीरति खो के
मानऽ पाप आँचर में भरबऽ ।।३३।।

अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम् ।
सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ।।३४।।

अतने नाहीं, बलुके दुश्मन
गइहें अति अपकीर्ति तहार ।
माननीय पुरुष खातिर जे
मृत्यु से वा बुरा अपार ।।३४।।

भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः ।
येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ।।३५।।

फिन सभ महारथी समुझिहें
रण छोड़ि तू भगलऽ डरि के ।
आ, जे बलधारी समुझतवा
निर्बल समुझी ऊ हँकरि के ।।३५।

अवाच्यवादांश्च बहून्वदिष्यन्ति तवाहिताः ।
निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम् ।।३६।।

तरह-तरह से दुश्मन लोगो
निन्दा करिहें समरथ के ।
अउर अनर्गल बातो कहिहें
जवन न चाही प्रकटे के
एह से बढ़ि के दुःख अउर का
होई एकर करऽ विचार ।
सब बातन्हि के गौर से सोचऽ
कहला के लऽ मन में धार ।।३६।।

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ।।३७।।

मरबऽतू यदि स्वर्ग में जइबऽ
जीतबऽतब लऽ भोगब राज ।
एह से अर्जुन ! तत्पर होके
युद्ध करऽतू धनु के साज ।।३७।।

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ।।३८।।

सुख-दुख, लाभहानि, जित-हार
सभ के एक समान समुझि ।
युद्ध में जुटि जा, पाप न लागी,
क्षात्रधर्म में झट जा बझि ।।३८।।

एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां श्रृणु ।
बुद्ध्यायुक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि ।।३९।।

सांख्ययोग तऽ अब तक कहलीं
अब कर्म योग के लऽ त सुन ।
जेकर ज्ञान भइला पर निश्चय
कर्मबन्ध के तजबऽ अर्जुन ! ।।३९।।

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ।।४०।।

कर्मयोग में कर्मनाश क
कहवाँ बा लक्षण लघुतर ?
अथवा आगे चलियो के कुछु,
अपकार, विघ्न के नइखे डर ।।
तनिको सा आचरणो एकर
निश्चिय निर्भय करि दीही । ।
सतत शुद्ध क्रिया कइला से
निश्चित बाटे होई जय भी ।।४०।।

व्यवसायात्मिकाबुद्धिरेकेह कुरुनन्दन ।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ।।४१।।

इहवाँ कार्य-अकार्य निश्चयक
बा प्रज्ञा राखल एकाग्र ।
यदि अइसन ना होई तब तऽ
बिचली प्रज्ञा हो के व्यग्र ।।
भिन्न-भिन्न क्षेत्र में दौरी,
क्षन-क्षन सोची विषय विभिन्न ।
ई अल्पज्ञ के करिए डाली
आपदग्रस्त, संकटापन्न ।।

एह से निश्चल मतियुत भइल
अथवा एक बुद्धि पऽ निर्भर।
कइल बडुए अति आवश्यक
जेहसे मोक्ष मिले सत्वर[10] ।।
ई तऽ पूर्व कथित बडुए कि
सांख्यबुद्धि से होला मोक्ष।
ओसहीं योग बुद्धि से मानऽ
मोक्ष रहे कबहीं न परोक्ष ।।
दूनों के जब फल एके बा
दूनो बुद्धि तब निश्चय एक।
निश्चल बुद्धि विनाश करेले
ठीके में चलबुद्धि अनेक ।।४१।।

१०—जल्दी

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः ।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः ।।४२।।

कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम् ।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति ।।४३।।

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयाऽपहृतचेतसाम् ।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ।।४४।।

जे बा वेद वाक्य पर लट्टू
अउर कहत बा ऊहे सभ कुछ।
इच्छापूर्ण, स्वर्ग कामी जे,
तीनों बिलकुल मूर्ख आ छूँछ ।।
अमुक क्रिया से सुलभ सम्पदा,
सुख अमुक से होय समक्षी।

"कर्म फलानुसार जन्म" के
ईहे[11] लोग सब हवे[12] पक्षी ॥
सुख ऐश्वर्य में आसक्ति-हे के,
मधुर वचन से बहकल चितके ।
अन्तः उर में कबो न ठहरे
निश्चयिका सद् बुद्धि उनके ॥
अथवा उर में जमे न उनका
आत्माविषयक भाव उचित ।
यानी दृढ़ता से ना ठहरे
कवनो बात पर उनुकर चित ॥ ४२-४४॥

११—उक्ततीन
१२—पक्षलेवे वाला समर्थनकार

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ॥४५॥

सत-रज-तमगुण वर्णित बाटे
वेदन में हे प्रिय अर्जुन !
कामी देही अइसन अब तू
गावऽ मति जे बा निर्गुन ॥
द्वन्द्व-त्रैगुण्य से रहित रहऽ तू
यानी सुख-दुख इच्छा - हीन ।
धीरज धारण करऽ सर्वदा
मति खोजऽ वस्तु जे न अधीन ॥
नित्य सत्त्व में स्थित हो करि के
तू योग क्षेम[13] से होइ रहित ।
विषय वासना से सुदूर रहि
समय बितावऽ आत्मचिन्तन हित॥४५॥

१३—योग-क्षेम प्राप्ति था एकर रक्षा

यावानर्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके ।
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥४६॥

वृहद् जलाशय के पवला पऽ
जइसे क्षुद्र जलाशय व्यर्थ ।
ओसहीं ब्रह्मानन्दप्राप्ति पऽ
ना वैदिक ज्ञान से अर्थ ।।
वेदविहित अश्वमेधादि से,
होला स्वर्ग-धन-पुत्रानन्द ।
पर निष्काम ब्रह्मज्ञानी का,
हो ईशभजन से परमानन्द ।।
स्वर्ग-पत्नि-सुत के सुख अर्जुन ।
बा दुखदाई, अल्पस्थाई ।
ब्रह्मज्ञानजनित आनन्द पर,
निश्चय बहुए चिर सुखदाई ।।
एह से काम्य-कर्म के तजि के,
निष्काम कर्म बा श्रेष्ठ कइल ।
ब्रह्मज्ञान के मार्ग अपनाके,
अच्छा बा चित ईश में धइल ।।४६।।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्म फल हेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ।।४७।।

करऽ कर्म तू, फल के मति सोचऽ,
फल में ना अधिकार तोहार ।
पर अकर्म में प्रीति न होवे,
एह से रहिहऽ तू होशियार ।।४७।।

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय ।
सिध्योसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ।।४८।।

सुदृढ़ चित्त हो योग में
फल में तजि आशिक्त।
सम हो सिद्धि-असिद्धि में
तू कर्म करऽ सभक्ति।।

ईहे समत्व-योग हऽ,
इहे ज्ञान के मार्ग।
एहसे बढ़ि के जग में
ना दूसर सन्मार्ग ।।४८।।

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनञ्जय ।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः ।।४९।।

सकाम कर्म से श्रेष्ठ बा
निष्काम कर्म हे पार्थ!
एह से एकरे आश्रय लऽ
तू पार्थ! होके निःस्वार्थ।।
बुद्धियोग के सिध भइला पऽ
होई परमात्मा के ज्ञान।
ई ज्ञान बा सुन्दर सबसे
चित्त लगावऽ दे के ध्यान ।।४९।।

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृतो ।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ।।५०।।

बुद्धि योग भा चितसमत्व से
जे व्यक्ति निज करेला कर्म।
इहलोक में छोड़ि के जाला
पुण्य-पाप शुभकर्म - अकर्म।।

एह से होखऽ तू सचेष्ट अब
योग साधना के खातिर।
कर्मबन्ध से मुक्त करावे
के हथियार वा ई आखिर ।।५०।।

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः ।
जन्मबन्ध विनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ।।५१।।

समत्व बुद्धि से युक्त व्यक्ति जे
कर्मऽफल के त्याग करी।
जन्मबंध से पा छुटकारा
परमेश्वर के स्थान धरी ।।५१।।

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ।।५२।।

मोह के गन्दा पर्दा के जब
पार करी सद्बुद्धि तहार।
खुद विरक्त हो जइब तब तू
बात सुनल होई बेकार ।।
चाह न रहीऽ तब कुछ जानें
भा सुनहीं के सच मानऽ।
ऊबि जइब, वैराग्य हो जाई
तब हृदय के सुद्धि जानऽ ।।५२।।

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला ।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ।।५३।।

विभिन्न वेद वाक्य के सुन-पढ़ि
चित्त भ्रमित वा भइल तोहार।
समाधिवृत्ति में चित निश्चल करि
बिन संशय तू होखऽ कुमार।
अइसन कइला पर मिल जाई
साम्यबुद्धि युत कर्मयोग।
तब बुद्धि या प्रज्ञा स्थिर होई,
स्थित-प्रज्ञ के लागी योग ॥५३॥

अर्जुन उवाच

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ॥५४॥

वचन सुनि के कृष्ण के,
पुछले भरत कुमार!
समाधिस्थ स्थितप्रज्ञ के,
लक्षण नन्द कुमार!
हमें बताईं शीघ्र अब,
स्थितप्रज्ञ के बोल।
आसन ग्रहण के रीति के,
मार्ग, चाल के पोल ॥५४॥

श्रीभगवानुवाच

प्रजहाति यदा पार्थ कामान्सर्बान् मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥५५॥

अर्जुन के करि बात मनोगत
कहले कृष्ण, — हे पृथापुत्र!
कामरहित आ आत्मलीन के
सभे कहे स्थितप्रज्ञ सुपुत्र ॥५५॥

दुःखेषु अनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगत स्पृहः ।
बीतराग भयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥५६॥

१:—आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैविक

त्रिदुख[15] ताप से तपे चित्त ना
आ सुख में ना होय आसक्ति ।
राग - क्रोध - भयरहित व्यक्ति के
कहे जगत स्थितप्रज्ञ सभक्ति ॥५६॥

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥५७॥

वस्तु प्रेम ना बाटे जेकरा,
ना शुभ - अशुभ से हर्ष-विषाद ।
ऊहे व्यक्ति वास्तव में हउए
स्थितप्रज्ञ अर्जुन ! बिनवाद ॥५७॥

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानिव सर्वशः
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥५८॥

जइसे कछुआ अपना तन के
सब ओरि से लेत सिकोर ।
ओइसे इन्द्रिय विषय से खींचे
१६—निर्दोष, सज्जन जे चित, ऊ स्थितप्रज्ञ अखोर[16] ॥५८॥

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्जं रसोप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥५९॥

निराहार रोगी के यद्यपि
हो विषय से क्षणिक निवृत्ति ।
किन्तु पूर्णतः प्रीति न जाये,
१७—झुकाव, चाह बल के पाते बढ़े प्रवृत्ति[17] ॥

पर योगी जे आत्मलीन बा,
विषय - ज्ञान से रहे अजान।
एह से अर्जुन ! स्थिरबुद्धि से
पावे व्यक्ति ब्रह्म के ज्ञान ॥५९॥

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः ।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥६०॥

बाकी यतनशील ज्ञानी जे
करीं न कबहीं इन्द्रिय रोध।
सब बलवती इन्द्रियनि मिलि के
लगिहें ओकर करे बिरोध॥
तब पराक्रमी, विचारवान के
चली न कुछुओ जा।ऽ वीर।
विवेक अउर सुविचार के मानऽ
पीठि दिखावे पड़ी गँभीर ॥६०॥

तानि सर्वाणि संयम्य युक्तः आसीत मत्परः ।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥६१॥

पाँच-पाँच ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय
अउर प्रबल ग्यारहाँ मन के।
हठात् खींचि के दृढ़ता से जे
ध्यान लगाई हम में तनिके॥
१८—बाधा डाली इन्द्रियचक्र न बाधी[18] ओके
बलुक उ पाई साथ हमार।
स्थितप्रज्ञ वास्तव में ओह के
दुनियाँ कहि दीऽ ठीक विचार ॥६१॥

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते ।
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥६२॥

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात् स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥६३॥

विषय-ध्यान से व्यक्ति के
मन में उपजे प्रीति ।
अउर प्रीति से कामना[19]
ओसे क्रोधक-भीत्ति ॥६२॥
शक उपजे तब क्रोध से
शक से हो स्मृति - हीन ।
स्मृतिहीनता से सुबुद्धि
होय तुरन्ते दीन ॥
बुद्धिहीनता से अहो !
व्यक्ति नष्ट ध्रुव होत ।
जइसे भानू के बिना
रहत कहीं ना ज्योत ॥६२-६३॥

१९—इच्छा

रागद्वेषवियुक्तस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधि गच्छति ॥६४॥

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥६५॥

जे ज्ञानी निज चित्त के,
वश में करि के पार्थ !
अउर रहित हो राग से,
भोगे भोग यथार्थ,

ओह राग से रहित का,
शान्ति प्राप्त अति होय।
विषयवासना चित्त में,
आवे नाहीं कोय ॥
शान्ति प्राप्ति के बाद में,
दुख विनष्ट सभ होत।
अइसन भइला पर अहो !
प्रज्ञा स्थिर त्वर होत ॥६४-६५॥

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना ।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ॥६६॥

आपन चित जे रोकि न रक्खी
प्रज्ञा ओकर रही न थिर।
जब तक प्रज्ञा थिर ना होई
आत्मज्ञान दुष्कर आखिर ॥
आत्मज्ञान ना जब तक होई
शान्ति प्राप्ति वा सम्भव कब ?
जब ले शान्ति मिली ना तबले
सुख प्राप्ति बा सम्भव कब ? ॥६६॥

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते ।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ॥६७॥
तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥६८॥

विषयलीन इन्द्रिय के पीछे
जब लागेला दउरे[20] चित।
अज्ञानी के प्रज्ञा के तब
हरत रहेले इन्द्रिय नित।

२०—जोर से चले

जइसे जल में हवा नाव के
खींचे निश्चय मनमानी।
ओसहीं इन्द्रिय गति के कारण
प्रज्ञा[21]-नौ के हो परेशानी ।।६७।।
एह से अर्जुन! ठीक समुझिलऽ
जे अपना सभ इन्द्रिय के।
विषय वस्तु से अलग राखि ली
स्थिर बुद्धि होई ओहके ।।६८।।

२१—बुद्धिरूपी नौका

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ।।६९।।

सभ प्राणिन्ह के राति जे
ऊ चितजेता के दिन।
चितजेता के राति जे
प्राणिन्ह के ऊ शुभ दिन ।।
विषय आत्मज्ञान हेतु
बड़ुए राति - समान।
किन्तु विषय - विजेता के
दिन के उहे प्रमान ।।
भा, समझीं कि विषय लीन के[22]
आत्मज्ञान बा राति-समान।
इन्द्रियजेता खातिर किन्तु
आत्मज्ञान बा सुदिन सु-जान!
ओसहीं अज्ञानिन्ह खातिर तऽ
विषयवासना ही सुख हऽ।
बाकी योगिन्ह खातिर ऊ तऽ
रजनी अइसन ही दुख हऽ ।।
जब तक मानव घोर नींद में
तब तक ही ऊ देखे सपना।

२२—खातिर

जगला पर फिर स्वप्न कहाँ बा ?
परि जाला ओह पर ढपना ।।
ओसहीं योगी का जबतक ना
होला आत्मज्ञान हे पार्थ !
तबतक ई संसार भ्रमित तऽ
लउकत ओकरा रहे यथार्थ ।।
जबहीं आत्मज्ञान हो जाला
ब्रह्मज्ञान हो जाला प्राप्त ।
विषय भोग के समुझे ला तब ।
सपना अइसन ऊ संप्राप्त ।।६९।।

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं
समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे
स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ।।७०।।

वारि भरल वारिधि में जइसे
सभ नदियन गिर - गिरि के
उदधि-सीम ना बदल सकेली
ओसहीं तऽ मानव जे
शान्त समुन्दर अइसन रहि के,
काम नदिन्ह के पाय ।
जो ना दीखे विकृत कबहूँ
ओ जग शांति लपटाय ।।७०।।

विहाय कामान् यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ।।७१।।

सभ प्रकार के इच्छा तजि के
ममता-अहंकार से हीन।
जे सन्यासी अथवा त्यागी
विचरण करत रहे अदीन[२३] ॥
ऊ स्थिर बुद्धि, आ ब्रह्मज्ञानी
पाई शाँति-सुख सतत इहाँ।
मोक्षो प्राप्त कर ली अवश्य ऊ
विना विचरले जहाँ तहाँ ॥७१॥

२३—दीनता रहित, उदार

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ
नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वाऽस्यामन्तकालेऽपि
ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥७२॥

हे अर्जुन ! हे पार्थ ! धनञ्जय !
ब्राह्मी स्थिति के ई इतिहास।
एकरा के पा मोह न उपजी,
कभी सताई विषय न खास ॥
अन्तकाल, चौथो पन में जे
एकरा खातिर करी उपाय।
ब्रह्म निर्वाण के भागी होई
बिन कइले अन्यान्य सूपाय ॥
विद्या पावत कालो में जो
केहू ग्रहण करी संन्यास।
अउर रही ब्राह्मी स्थिति में तऽ
पाई मोक्ष तुरत अनयास ॥७२॥

तृतीय अध्याय

ज्ञानयोग आ कर्मयोग के
पचड़ा में परि के अर्जुन।
कहले केशव के समुझाईं
दूनों के हम के एह जून॥

—::०::—

अर्जुन उवाच

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन।
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव॥१॥
व्यामिश्रेवणे वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे।
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम्॥२॥

ज्ञान योग व कर्मयोग, तत्पश्चात् निष्काम।
के शिक्षा सुनि कृष्ण से कहले पार्थ सु-नाम॥
कर्मयोग से अच्छा वा जो
ज्ञानयोग तब! हे भगवान[1]!
निष्काम कर्म के शिक्षा सुन्दर
काहे दे के कृपानिधान!
युद्ध कर्म में रउआ हमके

१—कृष्णजी

करत नियोजित अबहूँ बानीं
संदिग्ध वचन सभ कहि कहि के
विमल बुद्धि भरमावत बानीं ।।
उचित तऽईहे लउकत बा कि
सोचि समुझि के एके बात ।
हमें बताईं जल्दी से अब
जेह में श्रेय-प्राप्ति होतात ! ।।१-२।।

श्री भगवानुवाच

लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ।।३।।

अर्जुन के सुनि वचन जनार्दन
कहले, - हे अर्जुन ! निष्पाप ।
३—राह दुइ प्रकार के निष्ठा[3] के हम
४—स्वयम्, खुद वर्णन कइले बानीं आप[4] ।।
सांख्यन्हि खातिर ज्ञान योग आ
योगिन्ह खातिर कर्मयोग ।
मोक्षप्राप्ति के दूनों रास्ता
५—लक्षण के वर्णन कइलीं आभोग[5] ।।३।।

न कर्मणामनारम्भान् नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते ।
न च संन्यासनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ।।४।।

काम कइल छोड़ला से केहू
कर्मबन्ध से होई न मुक्त ।
अउर न एह क्रिया से कबहीं
चाहल सिद्धि से होई युक्त ।

सिद्धि-प्राप्ति खातिर आवश्यक
चित वृत्तिन्हि के पवित्रता बा।
संन्यासे धारण कइला से
ना ई प्राप्ति संभवित बा ॥४॥

नहि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥५॥

बिना काम कइले एको छन
रहो केहू कबहीं कइसे?
सत-रज-तमगुण के कारण तऽ
निश्चय करहीं परीऽ ओइसे ॥
प्राकृतिक काम के त्यागल नइखे
संभव कबहूँ जन खातिर।
कतनो केहू हाँके-खींचे,
ई बड़ुए सभ दुष्कर आखिर ॥५॥

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥६॥

कर्मेन्द्रिय के करे जे वश में
अऊर करे विषयन्हि के ध्यान।
ऊ लोग वितथी,[7] पाखण्डी,
डेल उचित ना उनका कान ॥६॥

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥७॥

जे करे इन्द्रिय वश में,
दे ना चित्त विषय के ओर।

ऊहे उत्तम व्यक्ति कहाला
कर्मयोग के साधक घोर ।।७।।

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः ।
शरीरयात्रापि च तेन प्रसिध्येदकर्मणः ।।८।।

एह से आपन नियत कर्म सभ
निश्चय कइल बड़ुए पार्थ !
ना अइसन होई तऽ ई तन
कवो रही न बनल यथार्थ ।।८।।

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः ।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर ।।९।।

यज्ञ अथवा परमेश्वर हेतुक
कर्म कइल निश्चय बा नीक ।
किन्तु अउर जे कुछुओ होई
कर्मबन्ध में बाँधी ठीक ।।
एह से पार्थ ! भक्ति भाव से
जल्दी होके अब निष्काम ।
करऽ यथार्थ चाव से आपन ।
कहल पूर्व में जे बा काम ।।९।।

सह यज्ञाः प्रजाः सृ'ष्ठा पुरोवाच प्रजापतिः ।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ।।१०।।

पूर्व काल में स्वयं प्रजापति ।
प्रजावर्ग के पैदा करिके ।
कहले,-यज्ञ करे सभ कोई
तबे बढ़न्ती होई सभके ।।

कामधेनु गइया अइसन ई
इच्छा पूरी सभ केहू के।
मोक्ष प्राप्ति के सुन्दर साधन
जानऽ अर्जुन ! तू एहू के ॥१०॥

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः ।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥११॥

समृद्ध करऽ तूं देववृन्द के
यज्ञ कार्य का जरिये स्वर
सभ देव मिलि निश्चय करिहें
तोहार वृद्धि श्रेयस्कर ॥११॥

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञ भाविताः ।
तैर्दत्तान्प्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः ॥१२॥

हो सन्तुष्ट यज्ञ से निश्चय
देव दिहें सभ इप्सित भोग।
उनसे प्राप्त के ना दे उनका
जो भोगे तव ऊ दुर्भोग ॥१२॥

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः ।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥१३॥

यज्ञ से बाँचल अन्न खाइ जे
ओकर छूट पाप सब जाय।
खुद खातिर जे अन्न पकावे,
बिना यज्ञ के कईले खाय ॥

निश्चय दुख भोगे ऊ जानऽ।
अउर घोर पापिष्ट कहाय।
एह से अर्जुन! उचित ईहेकि
अइसन जन से जा विलगाय ॥१३॥

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्म समुद्भवः ॥१४॥

कर्म यज्ञ के मूल,
यज्ञ से उत्पन्न मेघ।
मेघ से पैदा अन्न,
सभ अन्न से प्राणी-ओघ[८] ॥१४॥

८—समूह

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माऽक्षरसमुद्भवम्।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥१५॥

कर्मोत्पत्ति वा ब्रह्म[९] से,
अक्षर[१०] से वा ब्रह्म।
एहसे सर्वगत ब्रह्मा,
बाड़े यज्ञ के खम्भ ॥१५॥

९—प्रकृति
१०—ब्रह्म

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ॥१६॥

उक्त चक्र के क्रम से,
जे ना ससरी पार्थ।
इन्द्रिय विषय में लीन ऊ,
खोई आपन स्वार्थ ॥१६॥

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ।
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ।।१७।।

आत्मा में वा लीन जे,
तृप्त ओह से होय ।
ओही में जे तुष्टि हो,
करे कार्य मत कोय ।।१७।।

नैव तस्य कृतेनार्थो ना कृतेनेह कश्चन ।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ।।१८।।

कारज कइले लाभ ना,
नहिं कइले कुछ हानि ।
काहू से कुछु काम ना,
होवे काहे ग्लानि ।।१८।।

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर ।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पुरुषः ।।१९।।

फलासक्ति तब त्यागि के,
कर्म में होखऽ लीन ।
इन्द्रियजेता कर्म करि,
होत आत्म • तल्लीन ।।१९।।

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।
लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि ।।२०।।

जनक आदि ज्ञानी पुरुष
करत • करते निज कर्म ।

पवले सिद्धि परम इहाँ,
जग हिताय करि धर्म ।।
तूहूँ जग - कल्याण हित
करऽ जी, ! करतब कर्म ।
जे में जग के हो सके
पालित पोषित धर्म ।।२०।।

यद्यदाचरति श्रेष्टस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ।।२१।।

देख बड़न्हि के चाल के,
बरते सब संसार ।
जे प्रमाण धरि देत ऊ,
जगत चाल अनुसार ।।२१।।

न मे पार्थास्ति कर्त्तव्यं त्रिषुलोकेषु किञ्चन् ।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ।।२२।।

नहिँ त्रिलोक में शेष वा,
कवनो कर्म हमार ।
अउर न कवनो वस्तु वा
जे पावल दुशवार ।।
तबहूँ अपना कर्म में
लगल रहीं ले पार्थ !
विना लालसा के अहो !
विलकुल हो निःस्वार्थ ।।२२।।

यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ।।२३।।

आलस तजि जो कर्म में
रहीं न हम तल्लीन।
हर प्रकार से लोग
नकल में होइहें लीन ॥२३॥

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां चेदहम्।
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥२४॥

जो तजि दीं हम कर्म के
समुझि कि ई वा व्यर्थ।
प्रजा करी ना कर्म तब
होई पूर्ण अनर्थ॥
कर्म लोप से धर्म तब
होई तुरत विनष्ट।
धर्मनाश से शीघ्र फिन
तीनिलोक हो नष्ट॥
अउर कुकर्म के बढ़ती,
दुराचार में वृद्धि।
लागी तब शनैः घटे
संसृति के समृद्धि॥
वर्णे संकर जन्म ली,
लागी हमरा दोष।
दोष दुरावे खातिर त
कर्म करीं ले ठोस ॥२४॥

सक्ताः कर्मण्य विद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्या द्विद्वांसस्तथाऽसक्तः श्चिकीर्षुर्लोक संग्रहम् ॥२५॥

अइसे अनासक्त हो मूढ़ करे निज कर्म।
ओइसे चाहीं विज्ञ के पाले के निज धर्म ।।
सदा ध्यान करि लोक के केवल शुभ कल्यान ।
अनासक्त हो करि करे कर्म सदा विद्वान ।।२५।।

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्म संगिनाम् ।
जोषयेत्सर्व कर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन् ।।२६।।

आत्मज्ञान के सीख दे आज्ञानिन्ह के चित्त।
अकर्म मार्ग से खींचल सदा पार्थ ! अनुचित ।।
संभव कर्म प्रवृत्ति पर आ जावे झट आँच।
११—विलक्षण आचरण करे लोग
काम कइल सभ छोड़ि के लगे दिखावे नाँच[11] ।।
एह से सदा उचित वा बनि अगुआ अविराम
अनासक्ति के सीख दे करे करावे काम ।।२६।।

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणः कर्माणि सर्वशः ।
अहंकार विमूढ़ात्मा कर्ताऽहमिति मन्यते ।।२७।।

सतरजतम पर आश्रित बड़ए कुल्हिए कार्य क्रियमाण
बाकी मूढ़ समुझि लेला कि उ बा कर्त्ता समरथवान ।।२७।।

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्म विभागयोः ।
गुणागुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जत ।।२८।।

बाकी त्रिगुणतत्त्व आ
गुण-कर्मन के जनवैया।
समुझे सदा तीन गुन
करावे कर्म सुखदइया
ऊ ना समुझसु जड़ उ अस
कर्ता अपना के जानउ।

इन्द्रिय द्वारा प्रकृति तऽ
सभ कर्म करावे मानऽ ॥
महाभूत दस इन्द्रियन,
विषय सहित ई बीस ।
अहंकार - मन - बुद्धि सह
गुणविभाग तेईस—।
चेष्टा एह तेइसों के
कर्म विभाग कहाय ।
ए के समुझे विज्ञ जन,
ना मूरख समुदाय ॥२८॥

प्रकृतेर्गुणसम्मूढ़ा सज्जन्ते गुण कर्मसु ।
तान्कृत्स्नविदो मन्दान्कृत्स्नविन्न विचालयेत् ।२९॥

प्रकृति गुणन के फेर में परल व्यक्ति जे भ्रांत ।
गुन आ कर्म में निरत ऊ सदा रहल उद्भ्रांत ॥
एह संभ्रान्त अविज्ञ के ज्ञानीगन मत कोय ।
कवहू कर्म विचलित करे चाहे जे कुछु होय ॥२९॥

मयि सर्बाणि कर्माणि संन्यस्यऽध्यात्मचेतसा ।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः ॥३०॥

आत्ममनन में लीन हो आशा ममता त्यागऽ
होइ शोक से रहित तू शीघ्र परंतप जागऽ ।
हमरा पर सब काम सऊँपि हो तत्पर युध-हेत ।
आपन धर्मनि बाहिलऽ चित के तू समवेत ॥३०॥

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानबाः ।
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपिकर्मभिः ॥३१॥

जे हमरा उपदेश पर करि के अति विश्वास।
१२—फलाशा विन अवलोके दोष कुछ करी कर्म तजि आश[12] ।।
निश्चय होई मुक्त ऊ कर्मबन्ध से लोई।
अवरू पाई सगति के, दुश्चिन्त ना होई ।।३१।।

ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम्।
सर्वज्ञानविमूढ़ांस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः ।।३२।।

जे उल्टा उपदेश के करिहे इप्सित कर्म।
ऊ मतिमन्द, अज्ञानी खोई आपन धर्म ।।३२।।

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ।।३३।।

सभ केहू अनुसार चलेला
अपना मति-स्वभाव के पार्थ!
ज्ञानी भा अज्ञानी दूनों
जेकर जइसन होवे स्वार्थ ।।
प्रकृति भा स्वभाव पर कवनो
वश ना केकरो चलि पाई।
चलते स्वभाव के इन्द्रियराध
असंभव कइसे हो जाई? ।।३३।।

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ ।।३४।।

हर इन्द्रिय अनुकूल वस्तु से
राखेला अति प्रेम सतत।
आ प्रतिकूल से वैर विसाहे,
ना चाहे ला क्षेम-वितत ।।

रागद्वेष का वश में भइल
इन्द्रिय खातिर वा अनुचित
मोक्षप्राप्ति में बाधक दूनों,
दूनों से बाँचल समुचित ।।३४।।

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ।।३५।।

दूसर के सम्पन्न धर्म से
जे बाटे भय से संयुक्त
निज गुनहीन कहीं अच्छा बा,
ओह में मरल श्रेय से युक्त ।।
एह से अर्जुन ! क्षात्रधर्म से
विमुख भइल बा बिलकुल व्यर्थ ।
नरकबास खातिर प्रयास ई
कइला के ना बा कुछ अर्थ ।।
अबहूँ तत्पर होके उठिजा
युद्ध कइल बा अब अनिवार्य ।
कायरता, सम्मोह त्यागि के
पुरुषार्थ दिखावऽ अपरिहार्य ।।३५।।

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः ।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ।।३६।।

बात जानि के कृष्ण के पुछले पृथाकुमार
१३—ईश्वर कइसे प्रेरित व्यक्ति हो करे पाप करतार[13] ।।
इच्छा के प्रतिकूल जो मानव करे कुकर्म ।
शीघ्र बताईं कृष्ण जी ! का बा एकर मर्म ?।।३६।।

काम एष क्रोध एष रजोगुण समुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ।।३७।।

चकितचित्त केशव, कहले तव
काम-क्रोध रजगुण से जात[14]
निषिद्धकर्म में अर्जुन ! काम
करे नियोजित, नहीं अघात ।।
ई पापी, जगवैरी, जानऽ
अपना भाई क्रोध के साथ ।
पाप करावे में प्रकृत वा,
आन केहू के नइखे हाथ ।।३७।।

१४—उत्पन्न

धूमेनऽव्रियते वन्हिर्यथाऽऽदर्शो मलेन च ।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ।।३८।।

धूम से अग्नि, मल से दर्पण
अउर गर्भ झिल्ली से जइसे ।
सदा रहे आवृत्त, ढकल अति
रहे काम से ज्ञान ओइसे ।।३८।।

आवृत ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च ।।३९।।

ज्ञानी के प्रज्ञा पर परदा
डलले रहे सदा ई काम
एही काम, इच्छा का चलते
प्राणी के ना मिले आराम

ज्ञानी के ई दुश्मन, वैरी
आगिन अइसन होइ प्रचंड।
भभकत जाला ईंधन पाके
इच्छा पूरण-हेतु अखंड ।।३९।।

इन्द्रियाणि मनोबुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्येते ।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ।।४०।।

इहे काम-इच्छा घर बाटे, इन्द्रिय-मन आ प्रज्ञा के।
एह तीनों के जरिए इच्छा, मानव के ज्ञान रहे ढाके ।।४०।।

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ।।४१।।

एह से अर्जुन ! इन्द्रिय पर तू सबसे पहिले रोक लगावऽ।
तब ज्ञानविज्ञान विनाशक कामेच्छा के झट बिदराव ।।४१।।

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धः परतस्तु सः ।।४२।।

ई तऽ स्वतः सिद्ध बाटे कि
सभ इन्द्रियनि शरीर से श्रेष्ठ।
इन्द्रिय से मन, मन से बुद्धि,
बुद्धि से आत्मा उच्च यथेष्ट ।।४२।।

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मनमात्मन ।
जहि शत्रुं महाबाहो काम कामरूपं दुरासदम् ।।४३।।

अतः महाभुज ! वीर धनञ्जय !
आत्मा के प्रभुता के देखऽ।
मन के निश्चल करि के तुरते
काम रूप अरि के रन-पेखऽ ।।४३।।

चतुर्थ अध्याय

कर्मयोग के का प्रभाव बा,
कइसे एकरा कइल चाहीं।
एकर ज्ञान प्राप्ति के खातिर
ईहे पाठ धरीं मनमाहीं॥

—::०::—

श्री भगवानुवाच

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्॥१॥

एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप॥२॥

सभ से पहिले कर्म योग के
कहलीं सूर्य विवस्वत से।
ऊ कहले निज पुत्र मनूसे
मनुओ सुत इक्ष्वाकू से॥१॥

एह तरह पीढ़ी दर पीढ़ी
चलते आइल कर्म योग

राजर्षि सभ ज्ञाता रहले
कर्म योग के, सधले योग ।।
किन्तु परंतप ! बाद में आके
ई भइल संसार से नष्ट ।
जब जग ध्यान न दीहल तनिको
क्रमशः होते गइल बिनष्ट । ।।२।।

स एवाऽयंमया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः ।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्य ह्येतदुत्तमम् ।।३।।

ओह पुरातन योग के वर्णन
कइलीं आजु हम तोहरा से ।
चुँकि मित्र-प्रेमी हमार तू
एही से इ रहस्य दुहरा के ।।३।।

अर्जुन उवाच

अपरो भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः ।
कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति ।।४।।

बड़ा गजब सुनि के प्रसंग तव
कहले अर्जुन हे मधुरेश !
राउर जनम हाल में भइलऽ
पहिले लेले जनम दिनेश ।।
कइसे हम विश्वास करीं तव
कल्पादि में कहलीं रउआ ।
सूर्य वंश के आदि पुरुष के,
संभव वा ई मनबहलौआ ।।४।।

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ।
तस्याहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप ।।५।।

अर्जुन के तब वचन गूढ़ सुनि
कहले तुरते कृष्ण भगवान ।
जन्म हमार-तहार बहुत-सा
बीतल पहिले विज्ञ महान ।।
सभे जन्म के ज्ञान हमे बा,
तू बाड़ऽ ओह से अनजान
ज्ञान शक्ति हुमरा अइसन तऽ
नइखे तहरा पार्थ सुजान ? ।।५।।

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया ।।६।।

सभ के स्वामी, आ अविनाशी ।
स्वतः अजन्मा यद्यिप बानीं ।
अपना प्रकति आ माया के बल
सदा जन्म हम ले ले तानीं ।।६।।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाभ्यहम् ।।७।।

जब जब हानि धरम के होला
आ बढ़ती होला अधरम के ।
तबतब हम अपना इच्छा से
धारण देहि करीं ले रमि के ।।७।।

१—व्याप्त होई के

परित्राणाय साधूनां बिनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।।८।।

साधु सन्त के रक्षा खातिर,
दुष्ट लोग के नाशन हेत
अउर धर्म के कायम राखे
खातिर जनम सदा से लेत ।।८।।

जन्मकर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्मनैति मामेति सोऽर्जुन ।।९।।

जे अपूर्व जनम के हमरा
अउर कर्म के जाने तत्त्व ।
देहि त्यागि फिन जन्म न लेला
हमार करेला प्राप्त समत्व ।।९।।

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः ।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः ।।१०।।

भय-क्रोध ममता विहीन हो
हमरा में जे होके लीन ।
हमरे आश्रय में रहि मानव
ज्ञान तपस में रहि तल्लीन ।।
अउर शुद्ध हो तप प्रभाव से
आइ आइ मिलले हमरा में ।
जनम-मरण से मुक्त, बरी हो
भोगले मोक्ष हमरे पहरा में ।।१०।।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ।।११।।

जे भजीऽ जइसे हमरा के
ओसही हम भजबि उनके

देवि सकाम के सम्पति-सन्तति
कामरहित के पथ मोक्ष के ।।११।।

काङ्क्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः ।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा ।।१२।।

कर्मफलाकांक्षी दुनियाँ में
जे जे बा, सब पूजे देव ।
एह लोक में कर्मफलाप्ति
होला सहज सुलभ बिन भेव ।।
मोक्ष प्राप्ति के मार्ग कठिन बा;
एह से लोग न पूजे ब्रह्म ।
ब्रह्मार्चन खातिर आवश्यक
२—विश्वास प्रखर बुद्धि-विद्या-विश्र्भ[2]
चाहीं चाव निष्काम कर्म के,
विचार शक्तियों प्रौढ़, विमल ।
हो अधिकार कर्म में खाली, [3]
३—केवल होखे न इच्छा पाईं फल ।।१२।।

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम् ।।१३।।

चारि वर्ण के सिरजन कइलीं
गुण-कर्म विभाग अनुसार ।
ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के
उनुकर ऊनुकर गुण अनुहार[4] ।।
४- -अनुसार
शुद्ध सत्त्व पवलीं जेकरा में
ब्राह्मण देलीं ओकर नाम ।

सत-रज के मिश्रण जेकरा में
क्षत्रिय नाम रखलीं अभिराम ।।

रज-तम बाला लोग कहाइल
वैश्यवर्ण के उत्तम धारी ।।

तम प्रधान ही पवलीं जहवाँ
शूद्रनाम धइलीं सुविचारी ।।

अतना कइलो पर तू अर्जुन !
हमके शुद्ध अकर्त्ता जानऽ ।
निर्विकार, अव्यय, अविनाशी,
फिन हमके तू कर्त्ता मानऽ ।।१३।।

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्म फले स्पृहा ।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बद्ध्यते ।।१३।।

पर, कर्म के लेप न लागी,
वान्हि सकी ना हमके कर्म ।
चूकि काँक्षा फल के नइखे,
जग कल्याण बा केवल धर्म ।।
अइसन जे हमरा के जानी
कर्म बन्ध से होई मुक्त
जन्म मरण के दुख झंझट से[५]
सदा रही ऊ व्यक्ति अभुक्त[५] ।।१४।।

५—बिना भोग के

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमक्षुभिः ।
कुरु कर्म तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् ।।१५।।

अइसन समुझि सतयुग में मनुजी,
द्वापर में ययाति यदुराय ।

६—मोक्ष चाहे वाला

त्रेता में जनकादि नृपतिगण
सब मुमुक्ष[६] के हो समुदाय
मोक्षप्राप्ति-हित सधले कर्म,
कर्मबन्ध में फँसले ना।
जानि मर्म निष्काम कर्म के
ममता कबहूँ अँकले ना॥
एह से निज के कर्ता भोक्ता
बिन मनले तू हे अर्जुन!
कर्म करऽ निष्काम भाव से
जगहिताय कुल्हि तजि अवगुन ॥१५॥

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहितः।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज् ज्ञात्ता मोक्ष्यऽसेऽशुभात् ॥१६॥

कवन कर्म हऽ, कवन अकर्म हऽ
पंडितगण ना सकले जान।
एह से हम बतलावत बानीं
जेकरा जानि हे विज्ञ सुजान!
पापमुक्त होइबऽ निश्चय त
प्रज्ञा भ्रमित न रहि पाई।
बुद्धि बिकास आ मन के शुद्धि
बहुते जल्दी हो जाई॥१६॥

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥१७॥

कर्म-विकर्म-अकर्म-तीनि के
जानल अर्जुन बा अनिवार्य।

इनकर ज्ञान जबले ना होई
तबले संभव कहाँ सुकार्य ।।
जबन काम करे खातिर बा
धर्म शास्त्र में निहितादेश ।
उहे कर्म; मनाही जेकर
ह विकर्म ऊ शुद्ध अशेष ।।
तत्त्वज्ञान का भइला पर जब
हो इन्द्रियव्यापार प रोध ।
ओकरा के मानल अकर्मतऽ
शास्त्र सम्मत बा निर्विरोध ।।
कर्ममार्ग बाटे बड़ दुस्कर
समुझल चाहीं एह के पूर्ण ।
तीनों के ना भेद समुझले
ज्ञान तीनि के रही अपूर्ण ।।१७।।

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणिच कर्म यः ।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु युक्तः कृत्स्नकर्मकृत ।।१८।।

देखे कर्म में जे अकर्म,
भा अकर्म में देखे कर्म ।
ऊहे बुद्धिमान, योगी हऽ
सर्ब कार्यरत, जानत धर्म ।:
इन्द्रिय-कर्म के जे समुझे कि
कर्ता एकर आत्मा बा ।
ई हे 'कर्म में अकर्म" देखल
के उदाहरण अच्छा बा ।।
अध्याय दूइ में वर्णित बा कि
सत-रज-तम का कारण से ।

इन्द्रिय काम करेले आपन,
बिना रुकावट के दन से ।।
इन्द्रिय के गति रोकि सकी के ?
वा समर्थ ई केकरा में ?
आत्मा प्रेरित काम ओकर बा
शक-संदेह न एकरा में ।।
आत्मा कबहीं काम करेना
अउरु ना छोड़ेला काम ।
तन-इन्द्रिय सभ काम करेले
काम छोड़ि के करे अराम ।।
बिन काम कइले आत्मा के
जो कर्त्ता जाये समुझल ।
"अकर्म में कर्म देखला के"
ईहे बा दृष्ठान्त सुफल ।।
तीव्र यान में बइठल अदिमी
देखे कि बा चलते वृक्ष ।
पर, ई बात विपरीते जानऽ,
एह में ना सच्चाई कुछ ।।
फेनू, बहुत दूरि पर चलतो
केहू, खड़ा दिखाई देत ।
एकर केवल कारण दूरी
अउर अन्य ना बाटे हेत ।।
क्रमशः इ दूनों नजीर[8] तऽ
दूनों के[9] बा पूर्ण समर्थक ।
इतर भाव ले आइल बड़ुए
अर्जुन जानऽ पूर्ण निरर्थक ।।१८।।

८—दृष्टान्त
९—कर्म में अकर्म अउर अकर्म में कर्म

यस्य सर्वे समारम्भाः काम संकल्पवर्जिताः ।
ज्ञानाग्नि दग्धकर्माणं तमाहुः पंडितं बुधाः ॥१९॥

जे बिन इच्छा भा विचार के
कार्य करेले झट आरम्भ ।
भा ज्ञानाग्नि से जरलऽ जिनिकर
कर्मभाव के हो आरम्भ ॥
बुद्धिमान के मत में पंडित
ऊहे बाड़े सिद्ध सुजान ।
पवले बाड़े कर्म-अकर्म के
ऊहे तात्त्विक सुन्दर ज्ञान ॥
पंडित कर्म करे का पहिले
कवनो नाहिँ करसु संकल्प ।
अथवा फल के भोग करे के
कबहूँ रहे न पूर्व विकल्प ॥
उनुकर काम सदा स्वाभाविक,
जगहिताय, तन-रक्षण हेत ।
कइल अथवा तजल काम से
आत्मा के संबन्ध न देत ॥१९॥

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः ।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किञ्चित्करोति सः ॥२०॥

जे कर्म फलेच्छाहीन वा,
सदा तृप्त आ आश्रय हीन[10] ।
सतत कर्मरत रहलो पर ऊ,
रही अकर्मी, प्रज्ञ प्रवीन ॥

१०—बिना दोसरा के भरोसा के

ऊहे वा सच्चा सांन्यासी,
आत्मा में जे ले आनन्द।
समझे अउर कि आश्रय ओकर,
बाड़े केवल सच्चिदानन्द ॥२०॥

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्त सर्व परिग्रहः।
शरीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्विषम् ॥२१॥

सब प्रकार से आश हान जे,
चित्त हृदय पर जेकर वश।
विषयभोग सामग्री तजि के,
देह त्राण हेतुक बरबस॥
जे व्यक्ति नित काम करेला,
सदा कहावे निर्दोषी।
माया-मोह-ममता-मत्सर[11] से,
सदा अलग ऊ संतोषी ॥२१॥

११—क्रोध, डाह ईर्ष्या

यदृच्छालाभसन्तुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वाऽपि न निबध्यते ॥२२॥

बिन उद्योग प्राप्त वस्तु से,
सदा रहे जे जन सन्तुष्ट।
ईर्श्या - द्वेष - क्रोधादि - रहित,
द्वन्द्व स्थिति सम जानि हो तुष्ट॥
कार्य सिद्धि अथवा असिद्धि के,
असर परे जेके पर सम।
कार्य निरत ऊ कर्मबन्ध से,
सदा मुक्त हरषित हरदम ॥२२॥

गत संगस्य मुक्तस्य तानावस्थित चेतसः ।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते ।।२३।।

अनासक्त, सभ बन्ध मुक्त आ,
ब्रह्मज्ञान में चित तल्लीन ।
१२—यज्ञ अउर परमेश्वर
यज्ञ[12] हेतु सभ कर्म करे जे,
ओकर कर्म बा ब्रह्मलीन ।।२३ ।।

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्म कर्म समाधिना ।।२४।।

१३—हवन के वस्तु
स्रुवा - हव्य[13]-आगिन - हवन,
हवनकार सभ ब्रह्म ।
अइसन जे समुझे स्वयं,
ब्रह्मलीन परब्रह्म ।।
अइसन ज्ञानी कर्मफल
के ना भोगे भोग ।
काहे कि फलवे ब्रह्म हऽ,
१४—लक्षण
ब्रह्माप्तिक - आभोग [14] ।।२४।।

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते ।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति ।।२५।।

ब्रह्मज्ञानी आत्मा के,
ब्रह्मज्ञान केरि बल ।
ब्रह्मागिन में हवन कर
करसु ज्ञान - जग हल ।।
देवयज्ञ के कुछु करसु
पूजि देव साकार ।

पर ज्ञानी पूजसु सदा
मानि देव निरकार ।।२५।।

श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषुजुह्वति ।
शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति ।।२६।।

आँखि, कान आ इन्द्रियन,
के निज वश में आन ।
जवन कइल जा यज्ञ जी !
तीसर यज्ञ सुजान ।।
चौथ यज्ञ खातिर अहो !
शब्दादिन के नाश ।
इन्द्रियाग्नि में डालिके
करि देवे त्वर ह्रास ।।
अथवा भोगे विषय ऊ
जे नहिँ शास्त्र निषिद्ध ।
ओकरा भी इन्द्रियदमन
कहले योगी सिद्ध ।।२६।।

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे ।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिके ।।२७।।

कुछु योगी अइसनको होले,
इन्द्रियवृत्ति के देले रोकि ।
आउर प्राण-अपान वायु के,
संयमाग्नि में देले झोंकि ।।
सच्चिदानन्द ब्रह्म में अर्जुन !
ऊ हो जाले तुरते लीन ।

या सगरो से चित्त हटा के,
ईश्वर में होले लवलीन ।।
पँचवाँ योग कहाला ईहे,
हठयोगो से बढ़ि के विलष्ट ।
एह में सभ गति-चाल-स्तंभन,
हो जाला योगी के इष्ट ।।२७।।

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथाऽपरे ।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ।।२८।।

कतना यज्ञ करेले धन से,
देले अच्छा दान यथेष्ट ।
कतना चान्द्रायण व्रत करिके,
या कि, मौनवत धारि सचेष्ट ।।
अवरू कुछु अष्टाङ्ग योग आ,
प्राणायाम आ प्रत्याहार ।
करि के 'प्राण-अपान के रोकसु,
इन्द्रिय संयम करसु अपार ।।
कुछु नियम से वेद पाठ करि,
कुछु शास्त्र के मंथन कर ।
ज्ञान प्राप्ति में लीन रहेले,
ई पाँच यज्ञ इतरेतर ।।२८।

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथाऽपरे ।
प्राणापानगती रुध्वा प्राणायामपरायणः ।।२९।।

कुछु अपान में प्राण मिला के,
करेले पूरक प्राणायाम ।

कुछ प्राण में अपान मिला के,
१५—नियमन क्रिया करेले रेचक के आयाम[15] ॥
कुछ रोकि के प्राण-अपान के,
कुंभक नियमन करे कठोर।
स्तंभित करि के प्राणचालके,
१६—पूर्ण अधिक मनगति देले रोकि अथोर[16] ।
ग्यारहवाँ योग के ई क्रिया,
जानीं, कठिन न बड़ुए कम।
जवन व्यक्ति साधे एकरा के,
शंसनीय बाटे हरदम ॥२९॥

अपरे नियताहाराः प्राणन्प्राणेषु जुह्वति।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ॥३०॥

कुछ प्राणी कर अल्पाहार,
प्राणऽ गति के करेले धीम।
उनुका अइसन कइला से,
होले मनगति रुद्ध असीम ॥
मनगति का रुकला से निश्चय,
१७—भागे, भटके चित ना दउरे[17] इधर-उधर।
अइसन स्थिति का भइल पर तऽ,
१८—नष्ट नष्टप्राय हो पाप-निकर[18] ॥
बारहवाँ तरह के यज्ञ ई,
सब योगन्हि में उत्तरतम।
कुछ प्रयास निर्विघ्नरूप से
केहू कर पाई हरदम ॥३०॥

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ॥३१॥

यज्ञे के अवशेष अन्न के
भोजनकर्ता वर योगी।
ब्रह्म सनातन के पावेला,
कभी न होवे दुखभोगी ॥
यज्ञन्हि में जे किन्तु करे ना
कवनो यग निज मनमानी।
तब ना लोक या परलोको तऽ
उनुका खातिर शुभ जानीं ॥३१॥

एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे।
कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे ।३२॥

एह तरह के बहुत यज्ञ के
बड़ुए वर्णन वेदन में।
सब के जन्म कर्म से समुझऽ
अथवा वाणी-तन-मन से ॥
आत्मा से संबन्ध न इनिका,
चूँकी बाड़े कर्म रहित।
एकर ज्ञान भइला पर अर्जुन !
मोक्षप्राप्तियो बा निश्चित ॥३२॥

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तप।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ॥३३॥

सभ प्रकार के द्रव्ययज्ञ से
ज्ञानयज्ञ तऽ बाटे श्रेष्ठ।
अखिल कर्म-फल साथ निहित बा
ज्ञानयज्ञ में पूर्ण, यथेष्ट ॥३३॥

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ग्यानिनस्तत्त्वदर्शिनः ।।३४।।

तत्त्वज्ञान के प्रापति खातिर
गुरु के सेवा बा अनिवार्य।
अतः निकट जा, दण्डप्रणाम करि
प्रश्न करऽ जा उनसे आर्य !"
शास्त्र निपुण, तत्त्व के ज्ञाता
पूर्ण अनुभवी वर गुरु से।
शंका समाधान बा संभव
अइसन ब्रह्म-उपासक से ।।३४।।

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव।
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्स्यात्मन्यथो मयि ।।३५।।

तत्त्वज्ञान भइला पर अर्जुन !
मोह न कबहीं तहरा होई !
ओह ज्ञान का बल से तहरा
सब के दरशन हम में होई ।।
तब आत्मा आ परमात्मा के
समुझे में एकत्वो आई !
तबहीं ज्ञानो समुचित होई
अभिलाषा सभ पुरिओ जाई ।।३५।।

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ग्यानप्लवेनैव वृजिनं सतरिष्यसि ।।३६।।

कतनो बड़हन पापी होइबऽ
ज्ञानयुक्त एह नइया[19] से।

१९—नौका

भवसागर के तरिए जइबऽ
गुरुजन के सेवइया से ।।३६।।

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरतेऽर्जुन ।
ग्यानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ।।३७।।

२०—जलावन के लकड़ी

जइसे आगिन सूखल समिधा[२०]
भस्मीभूत करे ले झट ।
ओसहीं ज्ञानयुक्त आग्नि से
समुझऽ कर्म हो खाके पट ।।३७।।

न हि ग्यानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ।।३८।।

चितशुद्धि खातिर एह जग में
ज्ञान-सदृश बा ना कुछ अउर ।
मोक्ष प्राप्ति हेतुक तू समुझऽ
ब्रह्मज्ञान ही बा सिरमउर ।।
कर्मयोग-समाधियोग के
जे करीऽ अनुपम अभ्यास ।
उनुका अल्पकाल में होई
ब्रह्मज्ञान के शुभ आभास ।।३८।।

श्रद्धावाँल्लभते ग्यानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ग्यानं लब्ध्वा परां शांतिमचिरेणाधि गच्छति ।।३९।

श्रद्धा आ विश्वासयुक्त जे
जग में बा जितेन्द्रिय तत्पर ।
ज्ञानप्राप्ति खातिर जेकरा में

चुस्त चाह बा जागल वर ।।
निश्चय ज्ञान प्राप्त करि पाई
२१—उत्तम परम शांति आ मोक्ष प्रकृष्ट[21]।
एह से अर्जुन ! यथाशीघ्र तू
करि लऽ एने मन आकृष्ट ।।
ऊपर के श्लोक चौतीस में
दण्डवत-नमन-गुरुसेवा के ।
जे उपाय बतलावल बड़ु.ए,
ह चिह्न ऊ बहिर्साधना के ।।
संभव नाहूँ हो ओकरा से
ज्ञानप्राप्ति समुचित कौन्तेय !
संभव पाखण्डी करि पइहें
एकरा के सहजे में जेय ।।३९।।

अग्यश्चाश्रद्धानश्च संशयात्मा विनश्यति ।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ।।४०।।

श्रद्धाहीन आ अज्ञानी जे,
जेकरा आत्मा में सन्देह ।
ऊ तुरन्त ही खुद हो जाले
२२—जल्दी नश्वर, नष्ट, सत्वर[22] बिन-देह ।।
एह लोक परलोक में उनुका
मिले न कबहीं सुख आ शांति ।
प्रतिपल चक्कर खात रहेले,
२३—आराम, चैन कभी न पावसु ऊ विश्रांति[23] ।।४०।।

योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम् ।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय ।।४१।।

योगरीति से जेही अर्जुन !
सभे करम के करि दी त्याग ।
२४—मग्न, खुश अपने में ऊ मगन[24] रही, जी !
जागी ओकर निश्यय भाग ।।
कर्मबन्ध का फँसरी से ऊ
रही हमेशा पूरा मुक्त ।
कबहूँ विकृत मन ना होई,
रही ममता-मोह उन्मुक्त ।।४१।।

तस्मादज्ञानसम्भूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनाऽऽत्मनः ।
छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत ।।४२।।

आत्मा विषयक जे सँदेह बा
तहरा मन में अब जागल ।
ज्ञानरूप खंजर से ओकरा
छिन्नभिन्न करि, गहि के बल,
कर्मयोग में स्थिर हो जा त,
निश्चय होई सुन्दर ज्ञान
जेकरा पा के विजयी होइबऽ
वीर धनञ्जय ! चतुर सुजान
फिन दोहरावत बानीं समुझा-
संदेह कइल बा पाप विकट ।
जो एकरा के प्रश्रय देबऽ
आगे में आई बड़ संकट ।।४२।।

—:०:—

पंचम अध्याय

१—सांख्य

एह अध्याय में वर्णित बा
कर्म आ संन्यास[1] के भेद।
अर्जुन का पुछला पर केशव
खोलि बतवले इहाँ विभेद।।
कहले, यद्यपि मोक्ष प्राप्ति तऽ
दूनों से ही बड़ुए साध्य।
किन्तु कर्मयोग के साधलऽ
अच्छा बाटे अउर सुसाध्य।।

—::०::—

अर्जुन उवाच

संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि।
यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ।।१।।

शान्तभाव से वचन कृष्ण के
सुनि के कहले फेनू अर्जुन।
राउर कहल ध्यान करि केशव!
संकट में बानीं एह जून।।
कबहीं शिक्षा कर्मन्यास के
कबहीं कर्म करे के सीख।।

कवनो तर्क न काम देत बा,
कवनो राह न आवत दीख ।।
निश्चय करि के अब बतलाईं
कवन दूइ में बाटे ठीक ।
हमरा कवनो दूसर रास्ता
अबही लउकत नइखे नीक ।।१।।

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोग विशिष्यते ।।२।।

पृथापुत्र के बात सूनि के
कहले झटकि कृष्ण भगवान ।
संन्यास अउर कर्मयोग से
मोक्ष प्राप्ति बा सुलभ सुजान !
पर दूनों में कर्मयोग के
पालन बड़ुए उचित महान ।।
क्षत्रिय खातिर क्षात्र धर्म क
पालन बड़ुए श्रेष्ठ सुजान !
अत; युद्ध बा करना, ईहे
तहरा खातिर बा अच्छा ।
वर्तमान समय म अर्जुन !
ईहे एगो बा वांछा ।।
जबतक कर्मयोग के साधन
जो ना करबऽ तब तू जानऽ
अन्तःकरण शुद्ध ना होई,
ई बात तू निश्चय मानऽ ।।२।।

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न कांक्षति ।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते ।।३।।

राग-द्वेष के त्यागि धनञ्जय !
जे निष्कामकर्म-अनुरक्त ।
कारजलीन रहला पर ऊ तऽ
भवबन्धन से बा नासक्त[2] ।।
जे केहू से घृणा, प्रेम ना
करे, न चाहे कवनो चीज् ।
द्वन्द्व भाव, सुख-दुख सम समुझे
ऊ संन्यासी ठीक अजीज[3] ।।३।।

२—न + आसक्त उदासीन, तटस्थ, निर्लिप्त

३—मित्र

सांख्य योगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पंडितः ।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ।।४।।

सांख्ययोग आ कर्मयोग के
मूढ़ बतावे अलग-अलग ।
किन्तु बुद्धिमान के मत में
नइखे दूनों कबो बिलग ।
दूनों में कवनो सधला से
होई मोक्षे तऽ उपलब्ध ।
एह से कर्मयोग के साधऽ
तू होके अर्जुन ! विश्रब्ध[4] ।।४।।

४—निर्भय, निडर

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते ।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ।।५।।

सांख्ययोगबालन्हि के जे पद
कर्मयोगिन्ह के बा ऊहे ।

दूनों के पद दूइ न बड़ुए
केहू कतनो गाहे·गुहे ।।
जे सांख्य आ कर्म-योग के
देखे अर्जुन ! एक समान ।
वास्तव में पण्डित ऊहे हऽ
मर्मज्ञानी आ विद्वान ।।
वेदरीति से काज करे जे
कर्मीयोगी[5] पाके ज्ञान
सच्चा सांख्य योगी हो जाला
मत हमार बा पार्थ सुजान ! ।।५।।

५—कर्मयोगी

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः ।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नाचिरेणाधिगच्छति ।।६।।

बिना कर्म योग के सधले
बा कठिन सांन्यास के भइल ।
राग-द्वेष ना जबतक हटीऽ
चित के शुद्ध कठिन बा कइल ।।
कर्म योग के करत करत जब
चित-मानस निर्मल हो जाई ।
तबे तऽ सांन्यास के भावना
अन्तःउर में आइ समाई ।।

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः ।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्ध्वन्नपि न लिप्यते ।।७।।

जवना योगी के चित शुध बा
जे इन्द्रिय के जेता बा ।

जे ना अपना अउर पराया
में समुझेला भेदा बा ।।
सतत लोक रक्षा खातिर जे
कार्य प्रवृत्त रहेला वीर
कर्मबन्ध में फँसे न कबहूँ
ऊ हउ पुरुष योगी गम्भीर ।।७।।

नैव किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित् ।
पश्यन्शृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपन्श्वसन् ।।८।।

प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन् ।।९।।

यद्यपि तत्त्वज्ञानी योगी
देखे - सूने - छूए - सूँघे ।
खाए - चले - साँसले - बोले
छोड़े-पकड़े आउर ऊँघे
जाने कर्ता ना आत्मा के,
माने सभ इन्द्रिय व्यापार ।
कर्मफाँस में पड़े न कबहीं,
नाहिं करे फलप्राप्ति-विचार ।।८-९।।

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगंत्यक्त्वा करोति यः ।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ।।१०।।

ईश्वर पर अर्पित करि सभ कुछु
करे-धरे जे कर्म आ याप ।
पाप न ओकरा के छू पावे
जस कमलपत्र पऽ रहे न आप[६]।।१०।।

६—जल

कायेन मनसा बुद्धया केवलैरिन्द्रियैरपि ।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये ।।११।।

कर्म फलेच्छा छोड़ि के
आत्मशुद्धि के हेत ।
योगी - तन - मन- बुद्धि से
करे कर्म अभिप्रेत[7] ।।११।।

७—अभिलषित

युक्तः कर्मफलंत्यक्त्वा शांतिमाप्नोति नैष्ठिकीम् ।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते ।।१२।।

कर्मफल के चाह छोड़ि जे
करे कर्म ऊ हऽ निष्काम
कर्मफल के कांक्षी हो जे
ऊ हऽ अस्थिर व्यक्ति सकाम ।
जन निष्कामी के अहो !
परम शान्ति मिली जाय ।
पर सकाम युत व्यक्ति के
शान्ति नाहिं उपराय[8] ।।१२।।

८—प्राप्त हो

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी ।
नव द्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ।।१३।।

इन्द्रिय जेता, वर संन्यासी
त्यागि सकल निज कारज के ।
नव[9] द्वारी एह देह अजिर[10] में
सुख से बास करे छज के ।।
आत्मा सिवा अन्य व्यक्ति से

९—कान, आँख, नाक और मुँह के सात छिद्र और पेशाब तथा मलत्यागमार्ग के दो छिद्र
१०—नगरी

रक्खे ना संबंध तनिक।
बिन कुछ कहले भा करवबले
११—चिन्तन रहे शांति, बिन सोच[11] क्षनिक ।।१३।।

न कतृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः ।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ।।१४।।

आत्मा करे न उत्पन्न कर्त्ता
आउर कर्म आ कर्मफल।
प्रकृति अधीन होइ तन-इन्द्रिय
रहे कार्य-रत सदा अटल ।।
आत्मा-ईश्वर-जीव में
कुछओ नइखे भेद।
करसु न अपने कार कुछ
जानऽ पार्थ! निःखेद ।।
सूरज के तू देखि लऽ
उगसु जब ऊ चमकत।
सरसिज अपना क्षेत्र में
दिखसु हरदम विहँसत ।।
किन्तु, कुमुद के हाल का?
जाला सिकुड़ि तुरन्त।
उल्लू होला अन्ध आ
सहज न होय उड़न्त ।।
एह से तऽ प्रत्यक्ष वा
सब स्वभाव अनुसार।
प्रकृति करे बिन प्रेरणा
आपन आपन कार ।।१४।।

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः ।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ।।१५।।

प्राणिमात्र का पाप-पुण्य से
१२—आत्मा ईश्वर[12] का नहिं वा संबन्ध ।
प्राणी करे पुण्य भा पापे ।
ईश्वर करसु न कुछ प्रतिबन्ध ।
पर अज्ञानीगण समुझेले,
कि आत्मा सभ करे करावे ।
ज्ञान ढपल अज्ञान से उनुकर
एही कारण उ दुख पावे ।।१५।।

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः ।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ।।१६।।

आत्मज्ञान से जेकर विनशे
नामसञ्ज्ञी, मूढ़ता अज्ञान ।
उनुका खातिर आत्मज्ञान तऽ
होला अर्जुन ! सूर्य समान ।।
आत्मज्ञान आ ब्रह्मज्ञान में
तनिको नइखे अर्जुन ! भेद ।
एकर ज्ञान तब ठीक तरह से
करऽ पार्थ तू प्राप्त अखेद ।।१६।।

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषा ।।१७।।

परब्रह्म में लीन जेकर बा
निष्ठा आत्मा आउर बुद्धि।
जे जानत बा पर ब्रह्म के
आपन आश्रय आ सद्बुद्धि ।।
जिनिकर पाप विनष्ट ज्ञान से
ऊ बाड़े सुखदुख से मुक्त।
पुनर्जन्म ना होखे उनुकर,
तनधारण से ऊ उन्मुक्त ।।१७।।

विद्या विनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गविहस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः ।।१८।।

विद्या-विनय युक्त विद्वद्वर
समता के दिखलावे भाव।
ब्राह्मण - गौ- गज-श्वान-डोम के
आत्मा में राखे सम भाव ।।१८।।

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः ।।१९।।

गुण-समता के जे अपनावल,
जीते - जी जीतल संसार
ब्रह्मात्मा के रूप स्वयं हो
देले जग के एक आकार
ऊँच-नीच में भेद न मनले
चूँकि ब्रह्म हऽ सब के एक
निर्विकार, निर्दोष, निरिन्द्रिय,
कर्म रहित, अविनाशी, नेक ।।१९।।

न प्रहृष्येत् प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम् ।
स्थिरबुद्धिरसंमूढ़ो ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितः ।।२०।।

मोहहीन, सन्देहरहित जे
ब्रह्मज्ञानी, ब्रह्म में स्थित
प्यारी वस्तु पा नहिँ प्रसन्न हो
न अप्यारी पा मोद-रहित ।।२०।।

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम् ।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते ।।२१।।

आँखि - कान - नाक - जीभ आ
त्वचा पऽ जेकर वा अधिकार ।
दृश्य - श्रवण - गन्ध -रस-छूअल
से जेकरा बा तनिक न प्यार
वास्तव में अक्षय सुख-शान्ति
बा उपलब्ध सदा उनुका ।
ब्रह्मज्ञानी होई जेही
सुखानन्द होई तिनका ।।
अतः बाह्य इन्द्रिय के अर्जुन !
जब तू करबऽ अपना वश ।
विषय से उनका मोह न करबऽ
तब सब अक्षय पइबऽ बरबस ।।२१।।

ये हि संस्पर्शजा भोगाः दुःखयोनय एव ते ।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ।।२२।।

इन्द्रिय का विषयन्हि से जे सुख
होला प्राप्त ऊ दुखकारक ।

आदि अन्त बा ओह् सभन के
एह् से सभ सुख अपकारक ।।२२।।

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात् ।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः ।।२३।।

तन छूटे तक जे जे व्यक्ति
काम क्रोध के वेग सहेला ।
उनका के सब लोग धनञ्जय !
योगी अउरू सुखी कहेला ।।२३।।

योऽन्तः सुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः ।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ।।२४।।

जेकर आत्मा खुद प्रसन्न वा,
जो बिहरत बा आत्मा में
जेकर दृष्टि ओही पर बाटे
जो लीन परमात्मा में ।।
जेकर ध्यान बा दूरि विषय से ।
बाह्य पदार्थ वा शून्य समान ।
ऊहे ब्रह्म में लीन व्यक्ति तऽ
पावे मोक्ष अथवा निर्वाण ।।२४।

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः ।
छिन्नद्वैधायतात्मानः सर्वभूतहितेरताः ।।२५।।

जिनकर पाप हो गइल विनष्ठ,
छिन्नभिन्न शंका-संदेह ।

जीति लिहल जो अन्तः उर के,
अउरू राखल जग से स्नेह ।।
निश्चय मोक्ष के भागी भइल
पावल ब्रह्मनिर्वाण अवश्य ।
एमें कुछ संदेह कहाँ बा ?
ना खोजे के बाटे साक्ष्य ।।२५।।

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ।।२६।।

काम-क्रोध के जीति लिहल जे,
अउर लेल आत्मा पहिचान
सभे कर्म के त्याग कइल जे,
पावलवर्ग आ मोक्ष सुजान ! ।।२६।।

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः ।
प्राणापानौ समौकृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ ।।२७।।

यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ।।२८।।

इन्द्रियगन आ सभ विषयन्हि के
चित का बाहर खूब जमा के ।
नेत्रदृष्टि निज बना उन्मनी[12]
भा भौंहन्हि का [13] बीच लगाके
प्राण-अपान वायु के सम करि
काम[14]-क्रोध-भय से रहि दूर।
ऋषि मुनि होले मोक्ष परायण
सत्य बात बा ई भरपूर ।।२७-२८।।

१२–आधा खोलिके
१३–नाक का नोक पर रखि के
१४–इच्छा

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥२९॥

हम नारायण, साथी सबके,
कर्त्ता-भोक्ता सभ यप-तप के ।
सबके हम निर्व्याज हितैषी,
वासी सभ तन के अन्दर के ॥
अइसन बूझि आ तन्मय हो के
जे ठहराई चित हमरा में ।
पाई ब्रह्म निर्वाण अउर सुख
१५–मरला पर जब शरीर होई [15] गहिरा में ॥२९॥

षष्ठ अध्याय

योगी के आ योग के, विषयक जे जे बात ।
जानल चाहीं, जानिलीं रहे न मन पछितात ।।

—::०::—

श्रीभगवानुवाच

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः ।।१।।

कर्मफलेच्छा त्यागि के व्यक्ति करे जे कर्म ।
संन्यासी आ योगी के, उहे निवाहे धर्म ।।
आगिनहोत्री हो भले, करे न आपन कार ।
ऊ दूनों में कवनो ना, जन्म व्यर्थ, बेकार ।।१।।

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव ।
न ह्यसंन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन ।।२।।

जेकर नाम संन्यास हऽ, उहे कहाला योग ।
जे संकल्प ना त्यागल, योगहीन ऊ लोग ।।
वास्तव में संन्यास आ योग दूइ में त्याग ।
करहीं के बा कर्मफल, तवहीं जगी सु-भाग ।।२।।

आरुरूक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ।
योगारूढ़स्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ।।३।।

योगारूढ़ भइल जे चाहे, करे कर्म निश्चय निष्काम ।
जब विराग हो जा विषयन्हि से तब दे योगारूढ़ के नाम ।।
योगारूढ़ भइला के बाद, निश्चय करे कर्म के त्याग ।
एह त्याग का जरिए संभव ध्यान योग में जा मनलाग ।।३।।

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते ।
सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढ़स्तदोच्यते ।।४।।

१ संसारी व्यक्ति जब तक जग[1] संकल्प न त्यागी,
वश में करी न विषयन्हि के।
तबतक पदवी पा न सकी ऊ
योग आरूढ़ मानव के ।।४।।

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैवरिपुरात्मनः ।।५।।

हर व्यक्ति के चाहीं ले जा
आत्मा आपन उच्च शिखर।
अधःपतित कइला से एकरा
काम न पाई तनिक ससर ।।
आत्मा वा आत्मा के दुश्मन,
ईहे वा आत्मा के मित्र
आत्मा जवन बन्ध में डाली
उहे कहाई शत्रु विचित्र ।।
मोक्ष प्राप्ति होई जवना से
ऊहे मित्र कहाई पार्थ !

राग - द्वेष - मत्सर - ईर्ष्या से
रहित कहाई व्यक्ति यथार्थ ।।५।।

बण्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः ।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ।।६।।

जे जीतल आत्मा से आत्मा
इन्द्रिय -तन-मन वश में कर ।
ओकरे आत्मा बन्धु कहाई,
अउर कहाई शत्रु इतर ।।६।।

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ।।७।।

जीति लिहल जे निज आत्मा के
२—शान्त अउर रहल विश्वब्ध,[2] शान्त ।
३—सुख-दुख, सर्दी-गर्मी, मान-अपमान ओकर आत्मा द्वन्द्व[3] स्थिति में
सदा रहल स्थिर नहिँ अशान्त ।।
अइसन जन के हृदय में,
बास करे भगवान ।
चूँकि ओकरा चित्त में
नाहिँ पदारथ आन ।।७।।

ज्ञान विज्ञानतृप्तात्मा कूठस्थो विजितेन्द्रियः ।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।।८।।

४—जे विषय गुरु या शास्त्र से जानल जाय ऊ परोक्ष[4] अउर अपरोक्ष[5] ज्ञान से
जेकर आत्मा तुष्ट रहल

५—जवना विषय के मनुष्य अपना युक्ति या शंका समाधान करि के अनुभव करे ऊ अपरोक्ष ज्ञान कहाला।

परोक्ष ज्ञान है

जे कइल वश मन-इन्द्रिय के
योगी जग ओकरे कहल।
अइसन योगी खातिर बाटे
मिट्टी-पत्थर-स्वर्ण, समान
कबहूँ आन भाव ना अपने
ओकर मन में चतुर सुजान ॥८॥

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥९॥

सखा, मित्र, दुश्मन, तटस्थ आ
आन प्रकार के लोगन्हि के
जे सम देखे या समुझे सम
योगी श्रेष्ठ कहे जग ओह के ॥९॥

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः ।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ॥१०॥

६—योगारूढ़ व्यक्ति।

योगी[6] खातिर सदा युक्त वा
करे बास एकान्त।
चित्तात्मा पर संयम करि के
होइए ले ऊ शान्त ॥
कवनो इच्छा के बिन कइले,
सबसे[7] होइ विरक्त ॥
केवल योगाभ्यास में अर्जुन!
रहे सतत अनुरक्त ॥
गेह-द्वार, दारा, सुत, पत्नी
धन-दौलत आ राजपाट।

७—परिवार आदि से।

जे त्यागीं ऊहे कहलाई
संन्यासी, योगी सम्राट ।।१०।।

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ।।११।।

पबित्र भूमि पर आसन होखे,
भूमि हो समतल, ऊँच न खाल
ओकरा ऊपर कुशाचटाई,
तापर हो मृगचर्म बिछल ।।११।।

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ।
उपविस्यासने युञ्ज्याद्योगमात्म विशुद्धये ।।१२।।

मन - इन्द्रीय प्यापार रोकि के
जल्दी चित के करि एकाग्र ।
आत्मशुद्धि के निमित जितेन्द्रिय
करे ध्यान दे योग समग्र[8] ।।१२।।

८—सब

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः ।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ।।१३।।

तन, मस्तक. गर्दन थिर करि के
नासिकाग्र पर दृष्टि जमाइ ।
एकचित्त हो योगी अर्जुन !
आत्मा में चित देइ लगाइ ।।
कबो न देखे एने - ओने
देह भाग ना तनिक हिलाय ।।

अइसन भइला पर तऽ निश्चय
युक्त समाधि शीघ्र लग पाय ।।१३।।

प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ।।१४।।

शान्तचित्त, निर्भीक सदा हो
ब्रह्मचर्यव्रत धार अमल ।
एकाचित्त आसन पर बइठे ।
हमरा में रखि ध्यान अटल ।।१४।।

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः ।
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ।।१५।।

ऊपर कथित रीति से योगी
अपना मन के वश में कर ।
जो अभ्यास करी सुस्थिर हो
पाई शान्ति निश्चय प्रियकर ।।१५।।

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः ।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ।।१६।।

अति भोजन जे करे धनञ्जय !
अथवा जे कुछओ ना खाय ।
सूते अधिक भा जागल रहेऽ
योग कहाँ ऊ सिध कर पाय ? ।।१६।।

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्त स्वप्नावबोधस्य योगी भवति दुःखहा ।।१७।।

आहार विहार कार्य आदि में
अथवा जागे आ सूते में ।
जे जन नियम निरन्तर पाली
ओकर योग रही बूते[9] में ।।१७।।

९—काबू में, कस में ।

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते ।
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा ।।१८।।

चित एकाग्र करिके जे योगी
आत्मा में होई तल्लीन ।
कुछुओ के जो चाह करी ना
होई योगी सिद्ध प्रवीन ।।१८।।

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता ।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः ।।१९।।

शान्त वायु में दीपक जइसे
जरत रहेला हो सुस्थिर ।
वशीभूत चित, आत्मलीन हो
ध्यान योग में ओसहीं थिर ।।१९।।

यत्रोऽपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया ।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ।।२०।।

योगाभ्यास से रुद्ध चित्त जब
हो जाला अति निश्चल, पुष्ट ।

समाधिशुद्ध आत्मा के लखि के
हो जाला योगी संतुष्ट ।।२०।।

सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः ।।२१।।

बुद्धिग्राह्य, विषयन्हि से दूरि,
सुख के अनुभव या अनुमान ।
बुद्धिमान जब कर लेला, तब
आत्म रूप में हो विदमान ।।
बिलकुल स्थिर ऊअडिग हो जाला
नाम न ले कबहूँ खसके के ।
चूँकि इन्द्रिय के विषयन्हि से
आश न ओइसन सुख पहुँचेके ।।२१।।

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ।।२२।।

भारी दुःखो पा के योगी
आत्मलीनता के सुख से ।
कवनो सुख के अधिक न समुझे
कहले श्रीहरि अर्जुन से ।।२२।।

तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम् ।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा ।।२३।।

जवनावस्था में ना होला
कबहूँ दुःख के कुछु आभास ।

ओकरे नाम योग हऽ अर्जुन !
शान्तचित्त से करऽ अभ्यास ॥२३॥

संकल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः ।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः ॥२४॥
शनैः शनैरुपरमेद्बुद्धया धृतिगृहीतया ।
आत्मसंस्थं मनःकृत्वा न किंचिदपिचिन्तयेत् ॥२५॥

संकल्पित इच्छा के तजि के
करि विवेक से इन्द्रियरोध ।
दृढ़ बुद्धि से धीरे - धीरे
सब ओरि से चित अवरोध ॥
ब्रह्म चिन्तना में लगि गइल
चाहीं मानव के निश्चय ।
एह से बढ़िकर के सुखकारी
दुनियां में कुछु ना वा; तय ॥२४-२५॥

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥२६॥

सर्वविदित बा बात धनञ्जय !
कि, मन चंचलता के कारन ।
जबतब लागेला भरमाए
इतर सोचि कुछु, ना मिष्कारन ।
एहसे एकरा के जल्दी
खींचि उहाँ से, कर सुस्थिर ।
आत्मा में अति लीन करावल
चाहीं निश्चय यथा अचिर[१०] ॥२६॥

१०—शीघ्र

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् ।
उपैति शान्तिरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ।।२७।।

शान्तचित्त, रजगुण से हीन,
सुबुद्ध, ब्रह्मयुक्त, निष्पाप ।
योगी उत्तम सुख पावेला,
हो ना कबहूँ कुछ परिताप ।।
यानी रागद्वेष के कुछुओ
जेकरा में ना बा आभास ।
भा जे समुझत वा कि ब्रह्म
में बा सभ के सुन्दरभास ।
उहे जियते मुक्त कहाला,
धर्माधर्म के भाव रहित ।
अति पवित्र अइसन योगी तऽ
पावेला आनन्द अमित ।।२७।।

युञ्जनेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः ।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्त सुखमश्नुते ।।२८।।

धर्माधर्म भाव से हीन,
अउर सतत ब्रह्म में लीन ।
आसानी से पावे योगी ।
ब्रह्ममिलन-सुख हो, लवलीन[11]।।२८।।

११—ब्रह्म में लीन

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ।।२९।।

जेकर लागल चित्त योग में
अउर भइल जे समदर्शी ।

ऊ ना समुझे आत्मभेद कुछु
अपना या अउरन्हि में जी ! ।।२९।।

ये मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ।।३०।।

प्राणिन्ह में जे हमरा देखे
या हममें सब प्राणिन्ह के ।
ओके हम तऽ भूल न पाईं
भूले ना ऊहो हमके ।।३०।।

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः ।
सर्वथा वर्त्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ।।३१।।

देखे सबके एक नज़र से,
भजे हमार जे नाम सतत ।
वसर करे जीवन जसहूँ ऊ
ओकरा से हम कहाँ विरत[12]? ।।३१।।

१२—अप्रसन्न, विरक्त

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति सोऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ।।३२।।

आपन अइसन समुझे सबके,
सबके दुख - सुख एक समान ।
जेकरा अइसन शुद्ध ज्ञान बा
ऊ योगी बा बड़ा महान ।।३२।।

योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन ।
एतस्याहं न पश्यामि चंचलत्वात्स्थितिं स्थिराम् ।।३३।।

अर्जुन उवाच

कथन सूनि धीरे से कहले।
पृथापुत्र मधुसूदन से।
समता विषयक योग जे रउआ
कहलीं अबगे हमें प्रेम से॥
चचलता के कारन केशव!
सदा न मन में रहीं अमाय।
चूँकि मन बलवान, हठी आ
चंचल, नटखट बा अतिशय ॥३३॥

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथिबलवद् दृढ़म्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥३४॥

जइसे हवा के रोकल दुष्कर
ओसहीं मन के रोकल बा
लाख करीं कोशिश, उपाय सभ
व्यर्थ सिद्ध एकरा सन्मुख बा ॥३४॥

श्री भगवानुवाच

असंशयं हि महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥३५॥

निःसंशय मन चंचल होला
कहले केशव अर्जुन से।
बाकी एकरा के वश कइल
संभव बड़ए दू फन से॥
विराग अउर अभ्यास - साधने
करि पाई काबू में मन।

एह से क्रम से दुहूँ के साधन
कइल चाहीं पार्थ सुमन ! ॥
जो विराग ना पहिले होई
तब कठिन साधल अभ्यास ।
एह से एह नियम के पालन
कइल चाहीं करि आयास ॥३५॥

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः ।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः ॥३६॥

जाने के चाहीं एइजा कि
जीव अउर ब्रह्म के एका[13] ।
योग कहाला वीर धनञ्जय !
ई बाटे ना बात अटेका[14] ॥
जे मन के बश में ना करीऽ
योग प्राप्त ना करि पाई ।
विराग अउर अभ्यास से अर्जुन !
मन पर प्रभुता हो जाई ॥३६॥

१३—एकता

१४—बिना सहारा के

अयतिः श्राद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः ।
अवाप्य योगसंसिद्धिं का गतिं कृष्ण गच्छति ॥३७॥

कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति ।
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढ़ो ब्रह्मणः पथि ॥३८॥

फेनु पार्थ केशव से पुछले,
योग में रहते ही विश्वास ।
यदि चूके कबनो विधि मानव
साधे में ई योग अभ्यास ॥

का गति तब होई बतलाईं
तत्वज्ञान से विचलित के
निराधार बादल-टुक अइसन
गिरी का ऊ वायुलोक से ?।३७-३८।।

एतं मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः ।
त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते ।।३९।।

हमरा शकशुबहा के केशव !
बिलकुल दूर करीं झटपट ।
रउरा छोड़ि कहाँ के बा
दूर करी जे स्थिति अटपट ।।३९।।

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति ।।४०।।

श्री भगवानुवाच

पार्थ-वचन के सुनि के कहले,
झट से केशव कृपानिधान ।
कान देइ तू मन में धरिलऽ
सुन्दर सीख हमार सुजान !
एह लोक में भा दूसर में
कबहूँ हो ना ओकर नाश
अच्छा काम करेवाला का
ना आबेले दुर्गति पास ।।४०।।

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ।।४१।।

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ।।४२।।

योगभ्रष्ट के जन्म हो
पुण्यवान के लोक ।
बहुतवर्ष जी के उहाँ
फिन आवे मृतलोक ।।
करे सुशोभित धनिक भा
धीमानन्ह के गेह ।
जवन कठिनता से सुलभ
मृत्युलोक में एह ।।४१-४२।।

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्व देहिकम् ।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ।।४३।।

पर्व जन्म के कृत अभ्यास के
संयोग फेनु हो जाला ।
अउर अपेक्षा पहिले के कुछु
उत्साह अउर बढ़ि जाला ।।
मुक्ति लाभ खातिर तब कोशिश
अउर करेला ऊ योगी ।।
कबहूं ना राखेला मन में,
होखे के विषयन - भोगी ।।४३।।

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः ।
जिज्ञत्सुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ।।४४।।

जो अभागवश विषयवासना
भा ममता में फँसि जा ऊ ।

भा पूर्व अभ्यास का चलते
योग - मार्ग में बझि जा ऊ
अउर न अधरम करे कवो फिर
योग के होई फौरन जीत
अधरम कइलो पर हो जाई
जीत अवश्य कुछु समय व्यतीत ।।
ब्रह्मविचार में दृढ़ चित्त के
भइला रहला से तल्लीन ।
मुक्तिमार्ग के राह सुगम हो
ई हालत ना होखे दीन ।।४४।।

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः ।
अनेक जन्म संसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ।।४५।।

कठिन परिश्रम से चेष्टा करि,
सब पाप से हो के शुद्ध ।
कई जन्म के कृत अभ्यास से,
योगसिद्धि हो प्राप्त विशुद्ध ।।
योगसिद्धि से शुद्ध ज्ञान हो,
शुद्ध ज्ञान से मोक्ष सुलभ ।
मोक्षप्राप्ति से मृत्यु, जनम तऽ,
सदा रहेला पार्थ ! अलभ ।।४५।।

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ।।४६।।

तप करनिहार योगिन्ह से
कर्म करे वाला उत्तम ।

एह से अर्जुन ! खूब समुझि लऽ
योगी होखल वा सुखतम ।।४६।।

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना ।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ।।४७।।

श्रद्धापूर्वक जे हमरा स,
चित्त लगा लीही योगी ।
हम उनका के सब योगिन्ह से,
जानबि उत्तम उत्योगी ।।४७।।

सप्तम अध्याय

कइसे प्राप्ति ईश के होई आ माया पर होई जीत ।
कइ तरह के होले भक्तजन ई गावल वा ए में गीत ।।
इहवाँ सुनीं प्रेम से कथनी, का अज्ञान के हउए जड़ ।
कइसे काटि सकबि रउआ सभ अज्ञान तरु के जरि से जड़ ।।

—::०::—

श्रीभगवानुवाच

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः ।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ।।१।।

फेनु कृष्ण कहले अर्जुन से—
हमरा में जे चित्त लगा ।
करीऽ सभक्ति योग के साधन
हमरा एक शरन में आ ।।
उनुका के कइसे बिनसंशय
जनबऽ तू सुवीर ! धनञ्जय ।
चित्त लगा के सुनऽ प्रेम से
होके अब बिलकुल निर्भय ।।१ ।।

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ।।२।।

एह रहस्ययुततत्त्व ज्ञान के
युक्ति अउर अनुभव के साथ ।
हम बतलाइब अब तहरा के
जे जानि तू होइबऽ पार्थ ।
सभके ज्ञाता अ सभदर्शी
पावे के कुछु रही न शेष ।
लेकिन ओकर ज्ञान भइल कुछु
बाटे कठिन, अनन्त, अशेष ।।२।।

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ।।३।।

हजार में शायद केहू जन
यतन करेला जाने के ।
यतन-शील में शायद केहू
योग्य रूप पहिचाने में ।।३।।

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।
अहंकार इतीयं मे भिन्नाः प्रकृतिरष्टधा ।।४।।

क्षिति-जल-पावक-गगन-समीर-
अहंकार आ मानस, बुद्धि ।
इहे हमरा प्रकृति के अर्जुन !
शटे आठे के परसिद्धि ।

एह आठो से जग के सिरजन
होते रहल सदा निर्मान।
एही आठ के जानऽ अर्जुन !
ईश्वरीय माया: ना आन ।।४।।

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ।।५।।

१–लौकिक विद्या

ईहे आठो अपरा[1] प्रकृति ह
निम्नकोटि के जानऽ पार्थ !
अनेक अनर्थ के उद्भवथल
ईहे बाटे ठीक यथार्थ ।।
अपरा के अतिरिक्त अउर बा
परा नाम के प्रकृति हमार।
उच्चकोटि में गनना एकर
हमरा रूपे के आकार।
अपरा प्रकृति के नाम जड़ हऽ
परा कहाले बस चेतन।
अपरा हउए क्षेत्र रूप आ
परा प्रकृति क्षेत्रज्ञ, रतन ।।
हर प्राणि के काया में हम
जीवरूप में बानीं व्याप्त।
हमरा छोड़ि कहऽ के कइसे
तनके कबहूँ करली प्राप्त ।।५।।

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ।।६।।

एही दूइ प्रकृति का बल से
भइल जन्म बाटे सभ के।
एही से बानीं हम कारण
जग का शुरु अउर अन्त के ॥६॥

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥७॥

हमरा से बढ़िकर जगती में
केहू नइखे आन कहीं।
एही से जग गूँथल बाटे
हमरा में सर्वत्र सही॥
जइसे ताना में कपड़ा हो
भा हो तागा में मणियनि।
असहीं पूरा संसृति अर्जुन!
गूँथल हमरा में बा तनि[2] ॥७॥

२—अकड़ि के

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषो ॥८॥

जल, मं रस शशि भानु में ज्योति
सभ वेदन्हि में हम ओंकार।
गगन-सार जे शब्द कई बा
आ मनुष्य में बा जे सार[3]।
सब के मूलमंत्र हम बानीं
हमरा बिन सभ कुछ निःसार।
एह जगती में जे कुछ बाटे
हमहीं सभ के एक आधार ॥८॥

३—पुरुषार्थ

पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ ।
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ।।९।।

पृथ्वी में पवित्र गन्ध जे,
आगिन में जे बा आतप ।
प्राणिमात्र में जे जीवन बा
अउर तपस्विन्ह में जे तप ।।९।।

बीजं मां सर्वभूतानि विद्धि पार्थं सनातनम् ।
बुद्धि बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ।।१०।।

सब प्राणिन्ह के बीज सनातन
बुद्धिमान लोगन्ह के बुद्धि ।
अथवा विवेक शक्ति तू समुझऽ
तेजस्विन्ह के तेज - प्रबुद्धि ।।१०।।

बलं बलवतां चाहं कामराग विवर्जितम् ।
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ।।११।।

बली लोग के बल के कारण
काम-राग से रहित मुजान ।
सब प्राणिन्ह के प्रान के रक्षक
भोजनादि के चाह प्रमान ।।११।।

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये ।
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि ।।१२।।

शम-दम आदि सतोगुण भाव,
हर्ष-गर्वादि जे रजगुन ।

शोक - मोह - माया - ममता जे
तमगुन के बाटे लक्षन ।।
सभ के कारन प्रकृति हमार बा
उद्भव सभ के हम से जानऽ ।
पर हम संसारी के अइसन
कवनो के वश नइखीं मानऽ ।।१२।।

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ।।१३।।

एही त्रिगुन भाव से मोहित
जे हमरा के जानत नइखे ।
निर्विकार - अव्यय - परमात्मा
अविनाशी के मानत नइखे ।।
ई गुन उनुका ज्ञान प परदा
डालिए देले बा कसिके
एह से नित्य-अनित्य आदि के
ज्ञान न बा उनका वशि के ।।१३।।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ।।१४।।

एह तीनों से निर्मित अर्जुन !
दैवी हमरा माया के ।
जीतल बहुत कठिन काम बा
माया के वर साया[4] के ।।
सब आश्रय या धर्म त्यागि के
किन्तु शरन में आ हमरा ।

४—प्रभाव

जे ही भजी हमार नाम ऊ
जीति सकी यिश्चय एकरा ।।१४।।

न मां दुष्कृतिनो मूढ़ाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ।।१५।।

पापी - नीच - मूढमात किन्तु
कबो न भजिहें नाम हमार ।
सदा सोच में लागल रहिहें
करितीं अइसन कवनो कार ।।
जवना से शरीर के पोषण
होत रहित सदा दुर्निवार[5] ।
आत्मा भा परमात्मा - चिन्तन
सभ बाटे बिलकुल बेकार ।।१५।।

५—निश्चय

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतोऽर्जुन ।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ।।१६।।

चारि तरह के प्रानी वा जे ।
जिज्ञासु - अर्थी - आतुर - ज्ञानी,
नाम निरन्तर हमरे भजसु
तनिको नइखे जे अभिमानी ।
आतुर जे संकट में बड़ुए,
जिज्ञासु जेकर आत्माक चाह ।
अर्थी जे धन के अभिलाषी,
ज्ञानी चले जे हमरा राह ।।१६।।

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एक भक्तिर्विशिष्यते ।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ।।१७।।

उदाराः सर्वएवैते ज्ञानीत्वात्मैव मे मतम् ।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् ॥१८॥

एह चारो में अर्जुन ! ज्ञानी
बा सभ से अधिका उत्तम ।
ऊ माने हमरा के अधिका
हम ओकरा के सर्वोत्तम ॥
अच्छे बड़ुए बाकी तीनों,
पर ज्ञानीं ह जीव हमार ।
ओकर चित्त निरंतर हममें
लीनी रहेला दुर्निवार ॥१७-१८॥

बहूनां जन्मानामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥१९॥

कई जनम तक रहि सचेष्ट जे
जग के समुझे वासुदेव ।
अउरू समुझे वासुदेव के
छोड़ि न बड़ुए अउर देव ॥
सचमुच ऊ बा श्रेष्ठ महात्मा
अइसन व्यक्ति वा कठिन मिलल ।
खुद विचारि के देखऽ अर्जुन !
के वा अइसन हिलल-मिलल ॥१९॥

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥२०॥

जेकर प्रज्ञा कई चाह से
एने ओने भरमे ले।
जे अपना स्वभाव के कारन
रोज भाव के बदले ले।।
उनुकर बुद्धि हो जाले विकृत
अइसन कइला के कारन।
आन-आन देवन में अँटके
लागेला मन निष्कारन।।
बाकी जेकर मन श्रद्धा से
जेकरा में होला तल्लीन।
उनुका के हम ओह देव के
अर्चन में करि दींले लीन।।२०।।

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ।।२१।।

शंकर में चितलीन के,
ओने करीं प्रवृत्त।
हनुमान के पूजक के,
उनका में आसक्त।
हमरा में निष्काम जे
लीन रहेला पार्थ!
ओकरा के त मोक्षपद,
दीहीं ले निःस्वार्थ ।।२१।।

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते।
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हि तान् ।।२२।।

जेकर जइसन श्रद्धा होला
जइसन जेकरा में विश्वास ।
ओकरा ओरि से हम अ सहीं,
कर दीहीं ले पूरा आश ।।२२।।

अन्तवत्तु फलं तेषां सद्भवत्यल्पमेधताम् ।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ।।२३।।

जवन देव के जे भजे,
ओकरा उनका पास ।
भेजीं ले हम जल्दिए,
कइले बिना निराश ।।
लेकिन अपना भक्त के,
अपना पास बुलाय ।
अक्षय अउर अनन्त सुख,
दींले बिन अकुलाय ।।२३।।

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मम बुद्धयः ।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ।।२४।।

निराकार - अव्यय - अविनाशी
के जाने ना मढ प्रभाव ।
एकर कारन दूसर नइखे
केवल ज्ञान के पूर्ण अभाव ।।२४।।

नायं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ।।२५।।

सभ का नजरी में हम नइखीं
सभ ना जाने ला हमार।
अपना योग माया से हम तऽ
ढकल रहीं ले पूर्णतरा ।।
ई माया सचमुच में निर्मित
सतरजतम से बिया शुद्ध।
ईहे सभ का बुद्धि प डलले
पर्दा बिया कृष्ण विशुद्ध ।।
एह से मूढ न जानसु हमके
नित्य, अजन्मा, अविनाशी।
कुछुए भक्तन का मालूम बा
रूप हमार ई विश्वासी ।।२५।।

वेदाहं समतीतानि वर्त्तमानानि चार्जुन।
भविष्याणी च भूतनि मां तु वेदन कश्चन ।।२६।।

तीनों काल के चर - अचर के,
सबके बाटे हमरा ज्ञान।
पर भक्तन के सिवा अन्य के,
हम बानीं बिलकुल अनजान ।।२६।।

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत।
सर्वभूतानि संमोहं सर्गे यान्ति परंतप ।।२७।।

अपना इच्छा अउर द्वेष के
चक्कर में पड़ि के प्रानी।
पूर्ण भूला जाले हमरा के,
ई कुछ नइखे मनमानी ।।

भव-बन्धन में डाले वाला,
अउर करावे बाला क्षय।
एह दूइ के चाहीं झट से,
त्यागे के जल्दी निश्चय ।।२७।।

येषा त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढ़व्रताः ।।२८।।

जेकर पाप हो गइल दूर बा,
जे बाड़े सुखदुख से मुक्त।
ऊ पुण्यवान् व्यक्ति दृढ़ चित से,
बा उ भक्त हमार उपयुक्त ।।२८।।

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये।
ते ब्रह्मतद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् ।।२९।।

हमरा शरन में आकरि के जन,
जरामौत से छुट्टी खातिर।
यत्न कइ के जाने निश्चय,
ब्रह्म आ आध्यात्मा के आतिर ।।२९।।

साधिभूतीधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः।
प्रयाणकालोऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः ।।३०।।

जइसे भाफ-बादल-धूँआ आ
बर्फ सदा जल के प्रतिमान।
ओसहीं अधिभूत-अधिदेव आ
अधियज्ञन के हमहीं जान ।।
जे व्यक्ति दृढ़चित्त - हृदय से
होले वासुदेव में लीन।
मरन समय में तऽ निश्चय ऊ
हमरा में होले आसीन ।।३०।।

अष्टम अध्याय

एह अध्याय में बाटे वर्णित, करीं ध्यान ईश्वर के।
ईश-ध्यान कइले पर समुझीं, जनम न हो नश्वर के॥

—::०::—

अर्जुन उवाच

किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम।
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते॥१॥
अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन।
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः॥२॥

गूढ़ बात पुरुषोत्तम के सुनि
वीर धनञ्जय पुछले उनसे।
ब्रह्म - अध्यात्म - कर्म- अधिभूत
अधियज्ञाधिदैव नामन्ह से॥
कवन विषय के बोध महेश्वर
हमें बताईं रउआ द्युतर।
अवरू मौत समय में कइसे
जनिहें निग्रही[1] रउआ के वर !॥१-२॥

१—संयतात्मा

श्रीभगवानुवाच

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ।।३।।
अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम् ।
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर ।।४।।

प्रश्न जानि के पृथापुत्र के,
कहले केशव देवप्रधान ।
ब्रह्म नाम अक्षर - अबिनाशी
निराकार - परमात्म - महान ।।
अध्यात्म नाम ह वर स्वभाव के
अथवा मानीं नित्य जीव के ।
कर्म कहींले ओह यज्ञ के
जे से जन्म सभे सजीव के । ३।।
जवन वस्तु के क्षय निश्चित बा
ऊहे पार्थ ! समुझऽ अधिभूत ।
अधिदैव नाम हऽ सूत्रात्मा[२] के
जे शरीर में आविर्भूत ।।
हो के पोषण करे जीव के,
आ प्रोत्साहव दे इन्द्रिय के ।
भा कारन हो चेतनता के
पाले, पोसे सभ जीवन्ह के ।।
देब जत्थ से पूजित - अवरू,
जे वा सभ शरीर के वासी ।
अधियज्ञ रूप में ऊ हम विष्णु,
अंतरतम के एक निवासी ।।४।।

२—शास्त्र में पुरुषे सूत्रात्मा तथा हिरण्यगर्भ नाम से प्रसिद्ध बा ।

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥५॥

अन्तकाल में हमरा के भजि,
जे शरीर के देला त्याग ।
हमरा आत्मा में मिल जाला,
एह में तनिक न भ्रम के दाग ॥५॥

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यज्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदातद्भावभावितः ॥६॥

मरत समय में जेकर ध्यान करि
व्यक्ति तजेला अधम शरीर ।
पुनर्जन्म में प्राप्त करेला
ओही के तू जानऽ वीर ॥
संसारी माया में फँसि के
जे सोचे ला अउरू कुछ ।
ओकर जरा काल दुखदाई
होला आपे बिन कुछ पूछ ॥
अतः मोक्ष चाहे वाला के
चाहीं ब्रह्म के ध्यान करे ।
आदि समय से, न कि धनंजय
पूर्ण बुढ़ापा अइले पे ॥६॥

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्य संशयम् ॥७॥

हमरा के पावे खातिर तऽ
उचित कर्म बा कइल जरूर।
एकरा बिन पावल हमरा के
दुष्कर बड़ुए बिना उजूर॥
एह से पार्थ! हमरा में अब
मन आ बुद्धि के स्थिर करि के।
युद्ध करऽ झट बिन कुछ सोचे,
रहबऽ निश्चय दुख के तरि के॥७॥

अभ्यास योगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन्॥८॥

अभ्यास योग युक्त जे बड़ुए
जेकर चित ना अउर कहीं।
उहे मानव दिव्य पुरुष के
पावेला बा निश्चय ई॥८॥

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयां समनुस्मरेद्यः।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।९।
प्रयाणाकाले मनसाचलेन भक्त्यायुक्तो योगबलेन चैव।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् सतं परं पुरुषमुपैतिदिव्यम्

जे सर्वज्ञ - अनादि - सूक्ष्मतर
संसृति के शासन कर्त्ता।
सूर्यसदृश प्रकाशमान बा
प्रकृतिपरे कर्त्ताधर्त्ता॥९॥
ओह अचिन्त्य के भक्तियुक्त जे
चित्त योग से करि समवेत।

दूनों भौं के बीच प्राण रखि
ध्यान धरी त्वर हमरे हेत ॥
निश्चय पाई ऊ हमरा के
योगाभ्यास कइले कारन।
पुनर्जन्म आ मृत्युभय के
होला ए से शीघ्र निवारन ॥१०॥

यदक्षरं वेदविदोवदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥११॥

बैदिक कहसु जेकरा के अव्यय,
३–द्वेषहीन संन्यासी पावसु जेकरा के रागहीन[३]।
ब्रह्मचर्य धारसु जेहि हेतुक
ओकरा पद के सुनऽ प्रवीन ! ॥११॥

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् ॥१२॥
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥१३॥

दसो द्वार के बन्द करि,
मन के उर में रोक।
मस्तक में रखि प्राण के
योगस्थित निःशोक ॥१२॥
ओमाक्षर के याप जे
करे ब्रह्म मन धार।
पावे निश्चय परम पद
छोड़त रवा संसार ॥१३॥

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ।।१४।।

हमरा में चित राखि के,
हमे जे भजी व्यक्ति ।
ओह भक्त के सुलभ हम,
सदा रहीं सह भक्ति ।।१४।।

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ।।१५।।

जे हमरा के पावे अर्जुन !
परम सिद्धि के करे ला प्राप्त ।
पुनर्जन्म जे दुख के घर बा
ओकरा के फिन करे न आप्त ।।१५।।

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते

ब्रह्मलोक तक के लोगन्ह के,
पृथ्वी पर फिन आना आ ।
जो हमार शुभ ध्यान कथंचिद्
उनका से अनजाना बा ।।
बाकी हमरा तक जे पहुँची
पुनर्जन्म ना होई उनुकर ।
ब्रह्म के सुमिरन अर्जुन ! केवल
संसृति खातिर बड़ुए हितकर ।।१६।।

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद् ब्रह्मणो विदुः ।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः ।।१७।।

एक हजार चौकड़ी युग के,
ब्रह्म के होला एक दिन।
ईहे हाल रात के अड़ुए,
जे जानल से बा परवीन ।।
चारि लाख बत्तीस हजार के
वर्ष प्रमाण बा कलियुग के।
एके दूना द्वापर के बा,
कलिका तिगुना त्रेतायुग के ।।
चारिगुना सतयुग के अर्जुन!
भा सभयुग के जोडि धनंजय!
तेतालिस लाख बीस हजार,
वर्षमान बाटे कुल निश्चय ।।
युग अइसन हजार जब बीती,
अउर रातिओ ओइसनके।
तब दिनराति एक ब्रह्मा के
आठ खरब चौसठ करोड़ के ।।
अइसन सइ वर्ष जब बीती
तब ब्रह्मा के आयु परिमान!
एकतीस नील दस खरब आ,
चालिस अरब के होय सुजान!
एह अवधि के बीतलो पर जब,
ब्रह्म के निश्चित वड़ुए अन्त।
कवनो लोक के बासिन के तब,
जीवन कइसे रही अनन्त?

एह से जन्म बहुत बार तक
लेबे पड़ी आवर्त्तन में।
भव के दुख भोगहीं पड़ी
निश्चय सब ओह जन्महि में॥
एह से सच्चिदानन्दघन के
भजते रहलऽ बा अनिवार्य।
मोक्ष प्राप्ति के ई साधन तब
सब खातिर बा अप्रतिहार्य॥१७॥

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे।
रात्र्यागमने प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके॥१८॥

दूइ अवस्था ब्रह्मा के बा
जागृत आउर निद्रारूप।
स्वयं अगोचर ब्रह्मा बाड़े,
नइखे निश्चित एक स्वरूप॥
जगरत काले में हे अर्जुन!
चर-अचर सभ कार्य में लीन॥
निद्रावस्था में ब्रह्मा के
पूर्ण सृष्टिए होय विलीन॥१८॥

भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे॥१९॥

जीवसमूह ब्रह्मा के दिन में
लेला बार बार कई जन्म।
रात्रिकाल में फिनु हो जाला
पूर्ण अगोचर, मृत, निर्जन्म॥१९॥

परस्तस्मस्तु भावोऽन्योऽव्यक्तात्सनातनः ।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ॥२०॥

किन्तु अगोचर ब्रह्म-परे बा
अव्यक्त एक अउर परब्रह्म ।
जे अनादि, अनन्त, सनातन,
मृत्युहीन, अविनाशी, निभ्रम ॥२०॥

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् ।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥२१॥

शुद्ध सच्चिदानन्द, अविकारी,
मुक्त अद्वैत, निराकार ।
एह परब्रह्म के पवला पर
पुनर्जन्म के हो न प्रचार ॥२१॥

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ।
यस्यान्तः स्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ॥२२॥

इनके से संसार व्याप्त बा,
इनमें निहित चर-अचर शरीर ।
बिना अनन्य भक्ति, श्रद्धा के
कठिन प्राप्ति इनिकर हे वीर ॥२२॥

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः ।
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥२३॥

जन्म काल में योगी के हो
पुनर्जन्म अथवा निर्वान ।

ओह् काल के वर्णन अर्जुन !
सुनिये लऽ अब दे के कान ।।२३।।

ऊग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षड्मासा उत्तरायणम् ।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ।।२४।।

बाइस दिसंबर से एकइस जून तक
उत्तरायन के हऽ परमान ।
बाइसजून से एक्कीस दिसम्बर तक
दक्षिणायन के हऽ अधिमान ।।
अग्नि ज्योति-दिन-शुक्लपक्ष के
देवन-दिग से लेइ उठान ।
ब्रह्म निष्ठ सभ योगी केवल
देवमान से करसु प्रयान ।।
पूषमाह से ज्येष्ठमाह तक
सूर्य रहसु जब उत्तरायन ।
ब्रह्मनिष्ठ तन तजि के आपन
पावेले परब्रह्म अयन ।।
पुनर्जन्म जा होला उनुकर,
मृत्यु के ना उठे सवाल ।
शमन स्वयं हो जाला अर्जुन !
भव-बुख-दोष, जटिल जंजाल ।।२४।।

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्डमासां दक्षिणायनम् ।
तत्र चान्द्रमसं ज्तोतिर्योगी प्राप्य निवर्तते ।।२५।।

कर्म निष्ठ जे बड़ुए अर्जुन !
पितृयान से करे प्रयान ।

धूम - रात - कृष्णपक्ष में ऊ,
देवन डिग से लेइ उड़ान ।।
चंद्रलोक में जा पहुँचे ले
दक्षिणायन जब होले भानु ।
सभ सुख भोगि उहाँ के फिन ऊ
आवे ले एह लोक सुजानु ! ।।२५।।

शुक्लकृष्णेगती ह्येते जगतः शाश्वते मते ।
एकया यात्यनावृत्तिमन्यथा बर्तते पुनः ।।२६।।

देवयान ई शुक्ल मार्ग हऽ,
कृष्णमार्ग हऽ पितृयान ।
ज्ञाननिष्ठ अपनावे पहिला
कर्मनिष्ठ दूजा पहिचान ।।
ज्ञाननिष्ठ ना फिन से जन्मे
कर्मनिष्ठ अइसन अर्जुन ! ।
भेद समुझि ल ठीक तरह से
जानऽ सभ कुछ एही जुन ।।२६।।

नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन ।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन ।।२७।।

शुक्लमार्ग आ कृष्णमार्ग के,
जेकरा होई सुन्दर ज्ञान ।
ठीक न कबहीं धोखा खाई,
पहिला के ऊ दी अधिमान[२] ।
एह से अर्जुन ! शुद्ध चित्त से,
तुरत योग में तू लगि जा ।

२—प्रधानता

ब्रह्मनिष्ठता के अपना के,
३—प्राप्त कर मुक्तिमार्ग के साधन पा[३] ।।२७।।

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव, दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम् ।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम् ।२८।

वेदपाठ, तप, दान, यज्ञ से
जवन जवन फल होला आप्त ।
सबके ज्ञान प्राप्त करि योगी,
योग साधि, पावे पर्याप्त ।
परब्रह्म के धाममार्ग के,
निस्सन्देह धनञ्जय धीर !
एकरा से बढ़ि योगमार्ग के
इतर हेतु मत व्यर्थ सुमिर ।।२८।।

●

नवम अध्याय

एह अध्याय में वर्णित बा कि, ब्रह्मज्ञान बा सभ से श्रेष्ठ।
सभ जीव परमात्मा में स्थित बा, आदि-अन्त ऊ सबके इष्ट॥
फँससु बद्ध ना कर्मबन्ध में, एह से मुक्ति मार्ग-निर्देश।
कहले बाड़े श्री अनन्त खुद, जग कल्याण हेतुक संदेश॥
धर्मी अउर अधर्मी जीवन, अभिव्यंजित बा एहिजा।
नीचो कइसे मुक्ती पाई, ई हो वर्णित बा एहिजा॥

—::०::—

श्रीभगवानुवाच

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।
ज्ञानविज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥१॥

गुण में अवगुण खोजऽ मत तू,
ठीक से तहरा तऽ कौन्तेय!
विज्ञान सहित गुप्त ज्ञान के
चाहीं श्रवण करे के ध्येय॥
ओह ज्ञान के पवला पर तू
अशुभ कर्म से पइबऽ मुक्ति।

१—सांसारिक सुखभोग

सता न पाई निश्चय जनिहऽ
तहरा के सांसारिक मुक्ति[1] ॥१॥

राजविद्या, राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ॥२॥

सब विद्यन्हि के राजा ई हऽ
अत्यन्त गुप्त तथा पवित्र ।
सहज रीति से समुझ में आई,
अच्छा काम दिही सर्वत्र ॥
धर्म विरुद्ध ई तनिको नइखे,
सुख से होई ओकर प्राप्ति ।
नाश रहित ई ब्रह्म ज्ञान हऽ
ओकर कइल चाहीं आप्ति ॥२॥

अश्रद्धधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परन्तप ।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्तमनि ॥३॥

जेकर भक्ति आ श्रद्धा अर्जुन !
ओह धर्म के बा विपरीत ।
ऊ हमरा के कबो न पाई
रही मृत्यु लोक में भरमित ॥३॥

यया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्त्तिना ।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ॥४॥

हमरा में ई जगत व्याप्त बा,
मूर्त्ति हमार ई वा अव्यक्त ।

सबके वास यद्यपि हमरा में,
पर हम वानीं कहीं न व्यक्त ।।
चाँदी जइसे कल्पित सीपी में,
रस्सी में जइसे कल्पित साँप ।
सब जीव ओसहीं हमरा में,
निहित स्वयं वा आपे आप ।।४।।

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ।।५।।

हमरा योगमाया प्रभाव के,
देखऽ गौर से तू हे पार्थ !
जग के उद्भव, पालन पोषण,
करे हमार आत्मा निःस्वार्थ ।।
किन्तु, जीवमात्र से बड़ुए,
आत्मा पृथक पूर्ण हमार ।
एह बात पर तन्मयता से
पृथापुत्र ! तू करऽ विचार ।।५।।

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् ।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ।।६।।

जइसे भ्रमनशील वायु के
बासस्थान बड़ुए आकाश ।
ओसहीं प्राणिमात्र के अर्जुन !
हमरे में वा सदा निवास ।।६।।

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम् ।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ।।७।।

प्रलयकाल में प्राणी हमरा,
हो जाले प्रकृति में लीन।
कल्पारंभ में भिन्न रूप दे
जन्माईं ले हो तल्लीन ॥७॥

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ॥८॥

न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ॥९॥

प्रकृति के वश होके यद्यपि
जन्म दिहीं ले बारम्बार।
फिन भी बन्धन में ना पड़ीं,
कर्म करीले बे सरोकार
स्वकर्म फल के चाह करीं ना,
कबो न सोचीं कर्त्ता हम।
धर्माधर्म का बन्धन से त
मुक्त रहींले हम हरदम॥
जे अज्ञानी चाह करेला
अपना कइला के फल के।
ऊ निश्चय त बँधिए जाला
कर्मबन्ध में कुछु चल के॥
रेशम के कीड़ा जइसे अति
कीट-कोष में घिर जाला।
ओसहीं अज्ञानी जन अर्जुन!
स्वयं आप से फँसि जाला ॥८-९॥

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ।।१०।।

यद्यपि प्रकृति जड़ पदार्थ हऽ
करि न सके ई सृष्टि आप ।
२—सहायक फेनू उपादान[२] कारन ऊ;
रहे कार्यरत हो निष्पाप ।।
हमरा देखरेख में अर्जुन !
प्रकृति करेले पैदा सबके ।
गाड़ी का पहिया अइसन ई
संसृति घूमे अविरम के ।।१०।।

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् ।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ।।११।।

पर मूर्ख ना समझसु कबहीं
संसृति रचन के व्यापार ।
मानुष तन धरि रहलो पर ऊ
३—ईश्वर परमेश्वर मानसु ना हमके करतार[३] ।
अइसन कइला के कारन से
होला उनुकर नाश सतत
उचित बात ना सोचला से तऽ
सदा रहेले दुःख निरत ।।११।।

मोघाशा मोघकर्माणो मोधज्ञाना विचेतसः ।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः ।।१२।।

आसुरिए वृत्ति का चलते
कर्म सदा उनुकर निष्फल ।

आशा पूर्ण कबहीं ना होवे
रहे हमेशा ज्ञान विफल ।।
माया-मोह का फन्दा में पड़ि
दुर्व्यसनी होला उनुकर चित ।
एह कारन से जानि न पावसु,
का वा उचित, आ का अनुचित ।।१२।।

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः ।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ।।१३।।
सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढ़व्रताः ।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ।।१४।।

दैवी प्रकृति में आस्थाधारी
उच्च विचार के जे बा व्यक्ति ।
कारन आदि जानि हमरा के
पूजेले चित देइ सभक्ति ।।१३।।
हमरे चर्चा करत रहेले,
प्राप्ति हेतु करि सतत प्रयत्न ।
अउर करेले नमन भक्ति से
अर्चसु नित दिन सदा सयत्न ।।१४।।

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ते यजन्तो मामुपासते ।
एकत्वेन पृथकत्वेन बहुधा विश्वतोमुखम् ।।१५।।

कुछ अर्चें ले ज्ञान यज्ञ से
बिना भेदभाव के मनले
अथवा ईश्वर अउर जीव में
बिन फरक भा भेदे जनले ।।

बुद्धि भेद द्वारा कुछु पूजसु
जानि उपास्य आ पूज्य हमे ।
अउर अन्य सभ मानि ब्रह्म अस
निर्विकार में रहसु रमे ।।१५।।

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाऽहमहमौषधम् ।
मंत्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हूतम् ।।१६।।
पिताऽहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ।
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक् साम यजुरेव च ।।१७।।

हम क्रतु, यज्ञ, स्वधा, ऋक् साम
ऋचा, सोम, यजु, मंत्र, अगिन ।
जगत-पिता, माता, धाता, आ
बाबा, प्रणब, ज्ञातव्य आदिन ।।१६-१७।।

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् ।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ।।१८।।

जग के गति, पालक, स्वामी आ
सब काम के साक्षी हम ।
सब के शरण, गेह, हितकारी,
जन्म-मरन के भागी हम ।।
प्रलय स्वयं हम, बीजरूप आ
ब्रह्मा अवरू अविनाशी ।
प्राणिमात्र के आश्रयदाता
सब के मन-उर के बासी ।।१८।।

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च ।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ।।१९।।

सूर्य रूप में ताप-प्रदाता,
आ वर्षा के दाता हम।
स्तंभन वर्षा के हमरे से
मृत्यु, अमरता-दाता हम ।
सत्य-असत्य के जे प्रतीक ब
अउर सूक्ष्म के जे प्रतिरूप।
स्थूलो जग में जे कुछ बाटे
सब के हमहीं एक स्वरूप ।।१९।।

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापाः
यज्ञै रिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते ।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोक—
मश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान् ।।२०।।

हमरा इच्छा से वैदिक गण
सोमपियूष के अनुरागी ।
निष्पापी, क्रतुकारी आउर
स्वर्गलोक के जे भागी ।।
इन्द्रपुरी में जा के भोगसु
दिव्यदेवगन अइसन सुख।
कबहूँ ना महसूस करसु ऊ
का दीनता या का हऽ दुख ।।२०।।

ते त्वं भुक्तवा स्वर्गलोकं विशालम्
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्नाः
गतागतं कामकामा लभन्ते ।।२१।।

स्वर्गलोक के सुख भोगि के
अउर क्षीण भइला पर पुन।
फेनु मृत्युलोक में आवसु,
बीते समय सदा एह धुन ।।
कबहीं साथ न दे स्वतंत्रता
हो जो कर्म वेद अनुसार ।
चाह करे जे जग में अइसन
फल पावे ओही अनुहार ।।२१।।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योग क्षेमं वहाम्यहम् ।।२२।।

बिना भेद भाव जे योगी
करे हमार पूजन निष्काम।
निश्चय उनुकर क्षेम कुशलता
खातिर करदीं सभ आयाम[४] ।।२२।।

४—व्यवस्था, नियमन

येऽप्यन्यदेवताभक्त्या यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ।।२३।।

लेकिन जे अर्चे दोसरा के
आस्था, श्रद्धा, भक्ति के साथ ।
ऊहो हमरे अनविध पूजा,
उनु को पर हम रक्खीं हाथ ।।
किन्तु, मुक्ति ना दे पाईं ले
ओह सकामी, हम भक्तन्ह के।
कर्म फलाकांक्षी, अभिलाषी,
अन्योपासक, अनुरक्तन्ह के ।।२३।।

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च ।
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते ।।२४।।

यद्यपि सभ यज्ञन्ह के भोक्ता,
सब के स्वामी, मालिक हम।
किन्तू, भक्त निज अनविध पूजा
कारन दुख भोगसु हरदम।।
जन्म-मरण का फन्दा से ऊ
कबहूँ मुक्त न हो पावसु ।
पार्थ ! एक ई गीत हमेशा
हरेक जन्म में ऊ गावसु ।।२४।।

यान्ति देवव्रता देवान्
पितृन्यान्ति पितृव्रता ।
भूतानि यान्ति भूतेज्या
यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् ।।२५।।

जे पूजे जेकरा के,
जाये उनका पास ।
एह कथन पर पार्थ ! तू,
करऽ अवश्य विश्वास ।।
देव, पितर भा भूत के,
पूजक पावसु इष्ट ।
जे हमार पूजा करे,
पावे हमे अभीष्ट ।।२५।।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ।।२६।।

शुद्ध चित्त आ भक्ति से,
अर्पित हो जे वस्तु ।
पत्र, पुष्प, फल आपही,[५]
करीं स्वीकार समस्तु ॥२६॥

५—जल

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥२७॥

जे कुछ पार्थ ! करऽ काम तू
अउर भोज्य जो कूछुओ खा
होम, दान, तप, धर्मादिक
अर्पित हमके कइले जा ॥२७॥

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः ।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि ॥२८॥

संन्यास योग से युक्त चित्त
कथित रूप से करि सब काम ।
भव बन्धन से मुक्त हो जइबऽ,
हमके पा पइबऽ विश्राम ॥२८॥

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥२९॥

सभ खातिर हम एके बानीं
ना कोई शत्रु ना कोई मित ।
भक्ति साथ जे हमके पूजे
बसे ऊ हमरा, हम ओकरा चि ता॥२९॥

अपि चेत्सुदुराचारो भजते माभनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ।।३०।।

सभके छोड़ि अगर जो पामर
पूजा करी हमार सभक्ति ।
बास्तव में ओह साधु व्यक्ति के
६—प्रशंसनीय प्रशंस्य[६] धारणा अउर अनुरक्ति ।।३०।।

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शाश्वच्छान्तिं निगच्छति ।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ।।३१।।

अनन्य भक्त जे हू हमार हो,
धर्मयुक्त हो ओकर आत्मा ।
जल्दी से ऊ बन्धमुक्त हो
पावे ला निश्चय परमात्मा ।।
निश्चय जानऽ कुन्तिपुत्र तू
हमरा भक्त के होय न नाश ।
हमरा में जे लीन रही ऊ
कवहीं न होई व्यक्ति निराश ।।३१।।

मां हि व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परांगतिम् ।।३२।।

पापी, वनिता, वैश्य, शुद्र भा
जेहू लेला शरन हमार ।
उत्तम गति के प्राप्त करे ला,
संकट से हो जाला पार !।

हम ना जानीं वर्ण, जाति, भा
ऊँच-नीच के करीं विचार।
हरि के भजी से हरि के होई
वाटे निश्चत भाव हमार ।।३२।।

किं पुनर्ब्राह्मणः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा ।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ।।३३।।

पुण्यवान, सुकृत ब्राह्मण के,
राजर्षि के मति पूछऽ बात।
उत्तम कर्म कइला पर निश्चय
सुन्दर गति सब पइहें तात ! ।।
सुख विहीन एह जग में आके
भजन करऽ तू पार्थ ! हमार।
आपन-आन, मोह-ममता से
हो जाई निश्चय निस्तार ।।३३।।

मनमना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ।।३४।।

ममता तजि के अर्जुन ! तू अब
प्रति दिन पूजन करऽ हमार।
चित्त सदा हमरा में रखि के
करऽ सभक्ति अर्चन-सत्कार ।।
यज्ञ, यापं सभ हमरे हेतुक
दृढ़ होके जब करबऽ पार्थ !
पर ब्रह्म परमात्मा के ढिग
होई पहुँच तहार यथार्थ ।।३४।।

●

दसम अध्याय

एह अध्याय में पाइबि रउआ, वर्णित सुन्दर ईश - विभूति।
ऐश्वर्य, विभव, गुरुता, उत्तमता, अउर अलौकिक प्रभुता-शक्ति ॥

—::०::—

श्रीभगवानुवाच

भूय एव महाबाहो शृणु मे परमं वचः।
यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया ॥१॥

मित्र हमार तू हवऽ धनञ्जय !
एहसे तहरा हित खातिर।
बात कहत बानीं, कुछ सुनि लऽ
होई अति कल्यान आखिर ॥१॥

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः ॥२॥

हम बानीं सभ देवगणन्ह के
आउर महाऋषि लोगन्ह के।

कारन उद्भव के हे अर्जुन !
एकर पता न बा उन्हके ।।२।।

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम् ।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।३।।

जे अनादि, अज समुझे हमके
अ आविकार अनन्त, अजन्मा ।
प्राणी के प्रभु जानत जेही
मोहरहित निष्पाप उहे बा ।।३।।

बुद्धिर्ज्ञानमसम्मोहः क्षमा सत्यं दमः शमः ।
सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च ।।४।।
अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः ।
भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः ।।५।।

१–बाहरी इन्द्रियन के शान्त कइल
२–भीतरी इन्द्रियन के शान्त कइल

बुद्धि, ज्ञान, दम [1] क्षमा, अहिंसा
सत्य, दुःख, सुख, दान, अभय,
यश, अपयश, उद्भव, लय समता
तृप्ति, धीरता, तप, शम [2] भय ।।
प्राणिमात्र के तरह तरह के
भाव जे उर-चित में आवे ।
अपना अपना कर्म अनुसार
हमरे से नू सभ पावे ।।४-५।।

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा ।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजा ।।६।।

३–गौतम, अत्रि, भरद्वाज, वसिष्ठ विश्वामित्र, जमदग्नि, कश्यप या मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलह, क्रतु, पुलस्त्य वसिष्ठ ।
४–स्वरोचिश, रैवत उत्तम और तामस

सात[3] महाऋषि तथा चार[4] मनु
भइले उत्पन्न हमरा मन से
संसृति के उद्भव तब भइल
एही एकादश ऋषिगन से ।।६।।

एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्तितत्त्वतः ।
सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ।।७।।

जे हमरा, ऐश्वर्य, योग के
ठीक तरह से जाने ला ।
योग युक्त निश्चय ऊ मानुष
हमरा के पहिचाने ला ।।७।।

अहं सर्वस्य प्रभवः मत्तः सर्वं प्रवर्तते ।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भाव समन्विता ।।८।।

परब्रह्म हमहीं एह जग के
उद्भव, लय के कारन बानीं ।
सूर्य, चन्द्र, समुद्र आदिन्ह के
गति के कारन हमके जानीं ।।
हमसे सत्ता, स्फूर्ति प्राप्त करि
सब इन्द्रियन, प्रजा आ मन ।
तरह तरह के कार्य करे ले
कबहूँ ना होखसु उन्मत्त ।।
हमरा एह विभूति शक्ति से
अवगत जन हे कुन्ति सुवन !

नित्य प्रेम, श्रद्धा से हमके
स्मरन करे ले ऊ दे मन ।।८।।

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् ।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ।।९।।

हमरा में जे लीन रहेला
दिने भा राति में जन केहू ।
आपन प्रान अर्पित हमरा में
करि के समय बितावे नेहू[५] ।।
हमरे चर्चा आपस में करि
लोग करे उपदेश बखान ।
अइसन करि सन्तुष्ट प्रफुल्लित
सदा रहसु लऽ जानि सुजान ! ।।९।।

५—स्नेही, प्रेमी

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धि योगं तं येन मामुपयान्ति ते ।।१०।।

एह रूप से भक्ति करे जे
अउर रहे जे अर्चन-लीन ।
उनका के दे बुद्धि योग हम
कर लींही ले निज आधीन ।।१०।।

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः ।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ।।११।।

ओह लोग पर दया दृष्टि रखि,
उनके उर में पैठि सुजान !

अपना ज्ञानरूप दीपक से
दूराईं उनुकर अज्ञान ।।११।।

अर्जुन उवाच

परंधाम परंब्रह्म पवित्रं परमं भवान् ।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ।।१२।।
आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा ।
असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे ।।१३।।

परमनिकेतन, परमब्रह्म आ
परम पवित्र हे पुरुष प्रधान !
दिव्य रूप, देवादिदेव आ
अजर, अजन्मा, अज, गुणखान !
रउआ के सब ऋषि, मुनि आउर
देवर्षि व्यास, नारद, देवल ।
सम्बोधित एहि रूप करेले,
रउरो उक्ति बा ईहे प्रबल ।।१२-१३।।

सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव ।
नहि ते भगवन्व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः ।।१४।।

हे केशव ! जे ऋषिमुनि कहले,
अथवा राउर वचन महान् ।
सब सत्ये हम मानत बानीं
शंका कहीं न बा मतिमान्[६] ।।
रउरा उद्भव के कारन के
ना देव, ना जानी दानव ।

६—बुद्धिमान्

एह विषय में तनिक बखानो
सकि न करिओ कवनो मानव ।।१४।।

स्वयमेवात्मनाऽऽत्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम ।
भूतभावनभूतेश देवदेव जगत्पते ।।१५।।

हे पुरुषोत्तम, लोकेश्वर, विभु,
जगन्नियन्ता, वर देव-देव !
जगन्नाथ, जगदीश, मुरारी !
७—रहस्य जानीं ले निज जन्म के भेद[७] ।।१५।।

वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि ।।१६।।

अपना दिव्य विभूति के रउआ
स्वयं बताईं हे परमेश !
कइसे रउआ व्याप्त जगत में,
कवन कवन बा राउर भेष ।।१६।।

कथं विद्यमहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन् ।
केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया ।।१७।।

कवना कवना वस्तु में राउर
महिमा अधिक दिखाई देत ।
योगिराज ! बतलाईं कइसे
८—प्राप्त रउआ के हम करीं उपेत[८] ।।१७।।

विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन ।
भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम् ।।१८।।

अपनी महिमा अउर योग के
फेनु बताईं हे मथुरेश !
सुधा सदृश वाणी सुनि राउर
तृप्ति न होखत बा भूतेश !
यद्यपि रउआ वर्णन पहिले
कइले बानीं आपन रूप।
तबहूँ अउर अधिक जाने के
इच्छा बढ़ते जात अनूप ! ।।१८।।

श्रीभगवानुवाच

हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्म विभूतयः ।
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे ।।१९।।

नइखे अर्जुन ! अन्त कबहिंओ
हमरा महिमा के इतिहास।
तबनो प हम तहरा के पार्थ !
हाल सुनावत बानीं खास। १९।।

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एवच ।।२०।।
आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान् ।
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी ।।२१।।
वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः ।
इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना ।।२२।।
रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम् ।
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम् ।।२३।।

सब के उर के बासी आत्मा
सभ के आदि, मध्य आ अन्त
बारहो आदित्य में विष्णु हम,
सभे ज्योति में सूर्य अनन्त ।।
उन्चास वायु में हम मरीचि,
तारागन में चन्द्र प्रधान
वेदन्ह में हम सामवेद आ
देवन्ह में हम इन्द्र महान ।।
इन्द्रियगन में मन हम हईं
प्राणिन्ह में हम चेत सुजान !
ग्यारहों रुद्र में शंकर हईं
स्वयं कुबेर हम यक्षन्ह में ।।
आठो वसुअन में आगिन आ
पर्वत में हमहीं सुमेर ।
अउर रूप के पृथा पुत्र तू
सुनऽ गौर से चित के फेर ।।२०-२३।।

पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम् ।
सेनानीमहं स्कन्धः सरसामस्मि सागरः ।।२४।।
महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम् ।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः ।।२५।।

पुरोहितगन में हम बृहस्पति,
सेनापति में कार्त्तिकेय ।
जलाशयन्ह में बानीं सागर
महाऋषिन्ह में भृगु अजेय ।।

वाणी में ओंकार हई हम,
जपयज्ञ हई यज्ञन्ह में।
स्वयं हिमालय हम के जानऽ
स्थावर सबनी वस्तुन्ह में ।।२४-२५।।

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारद ।
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलोमुनिः ।।२६।।
उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम् ।
ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम् ।।२७।।

वृक्षनाम में पीपल बानीं,
देवर्षिन्ह में बानीं नारद।
चित्ररथ गन्धर्व में हम खुद,
सिद्धमुनिन्ह में कपिल विशारद ।।२६।।
अश्वन्हि में अमृत से उत्पन्न
उच्चैःश्रवा हमरे के जान।
हाथिन्ह में ऐरावत हमके
अउर नृपति मानव में मानऽ ।।२७।।

आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक् ।
प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः ।।२८।।
अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम् ।
पितृणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम् ।।२९।।

शस्त्रन्ह में हमरा के जानऽ
कठिनवज्र हे पाण्डव वीर !

गाइन्हि में हम कामधेनु आ
९—पैदा करे वाला प्रजनकर[९] में कन्दर्प[१०]-शरीर ।।
१०—कामदेव हमहीं सर्पजाति में वासुकि
नागन्ह में हम हईं अनन्त ।
जलदेवन्ह में वरुण हम्हीं के
११—प्रिय निश्चय जानऽ अर्जुन कन्त[११] !
पितरराज अर्यमा बानी हम,
शासक में यमराज स्वयम् ।
असहीं रूप अउर हमार बा,
तरह तरह के मानऽ अभयम् ।।२८-२९।।

प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम् ।
मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम् ।।३०।।
पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम् ।
झषाणां मकरश्चास्मि स्रोतसामस्मि जाह्नवी ।।३१।।

दैत्यन्ह में प्रह्लाद स्वयं हम,
१२—गणक कलनकार[१२] में काल अदम्य ।
मृगगन बीच मृगेन्द्र नाम हऽ
पक्षिन्ह में हम गरुड़ अगम्य ।।३०।।
पवित्रकार में पवन तथापि
योद्धन्हि में हम राम हईं
मगर नाम मछलिन्ह में जानऽ
नदिन में गंगा स्नेहमयी ।।३१।।

सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन ।
अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम् ।।३२।।

अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्द्वः सामासिकस्य च ।
अहमेवाक्षयः कालो धाताऽहं विश्वतोमुखः ।।३३।।

प्राणिन्ह के आदिमध्यान्त हम,
विद्या में अध्यात्म ज्ञान ।
तर्कन में सिद्धान्तवाद हम,
अक्षर में अकार प्रमान ।।
द्वन्द्वसमास समासन्ह में हम
अक्षय, अविनाशी काल महा ।।
जग के रक्षक, पालक आउर
हम विष्णु, महेश अउर ब्रह्मा ।।३२-३३।

मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम् ।
कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिःक्षमा ।।३४।।

सभ के नाश करैया हमहीं
सभ उन्नति के कारन हम ।।
वनिता में कीर्ति-क्षमा-लक्ष्मी-
स्मृति-मेधा-धृति वाणी हम ।।३४।।

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम् ।
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः ।।३५।।

सामवेद के मन्त्रन्हि में हम
बृहत्साम बानीं हे कन्त !
छन्दन्हि में गायत्रिछन्द आ
मास अग्रहन ऋतु बसन्त ।।३५।।

द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ।
जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम् ।।३६।।
वृष्णीनांवासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनञ्जयः ।
मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः ।।३७।।

छल कपट में जूआ त हमहीं
तेजस्विन्ह में तेज हमहीं ।
उद्यमकारिन्ह के व्यवसाय आ
विजयी के त जीत हम्हीं ।।
सत्त्वयुक्त के सत्व तथापि
यदुवंशिन्ह में वासुदेव ।
पाण्डवगन में हम्हीं धनञ्जय,
मुनिगन में हम व्यास देव ।।
कविगन में हम कविशिरोमनि
शुक्राचार्य अति धीर महान् ।
एकराबाद कुछ अउर जानि लऽ
१३—ऐवर्श्य विभव विषय में तू धीमान्[13] ।३६-३७।।

दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम् ।
मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम् ।।३८।।

दमनकारिणी हमहीं शक्ति
विजयेष्णुन्ह के नीति, युक्ति हम ।
गोपनीय में मौनवृती आ
ज्ञानवान के ब्रह्मज्ञान हम ।।३८।।

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन ।
न तदस्ति बिना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम् ।।३९।।

प्राणिमात्र के उद्भव हम से,
सब के हमहीं बीज यथार्थ।
चर आ अचर में कुछओ नइखे
जहाँ न होईं हम हे पार्थ ! ।।३९।।

नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परंतप ।
एषतूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया ।।४०।।

हमरा दिव्य विभव के नइखे
कवनो अन्त भा आन विकल्प
हम अबतक जे कुछओ कइलीं
वर्णन तोहसे, बड़ुए स्वल्प ।।४०।।

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम् ।।४१।।

जो चाहत बाड़ऽ तू जानलऽ
हमरा विभूति के विस्तार।
भा ऐश्वर्य आदि के जानल
ततत[१४]-विततत[१५]-विकाशन के सार[१४]
तव समुझऽ कि जे पदार्थ वा
कान्ति अउर ऐश्वर्य से युक्त।
सभके उद्भव भा स्थिति में तऽ
बाटे तेज हमार प्रयुक्त[१६] ।।४१।।

१४—विस्तार
१५—शक्ति, सत्त्व
१६—सम्मिलित

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन ।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितोजगत् ।।४२।।

अलग अलग से एह सब के तऽ
जनला के ना बा कुछ लाभ।

अतने समुझि के रखऽ पार्थ ! कि
पूर्ण जगत के जे बा नाभ[१७] ।।
हमरा एक अंश पर निर्भर
भा आधारित बा कौन्तेय !
जे आदि चरण परमात्मा के
ऊहे बड़ुए केवल ज्ञेय ।।
शेष तीन बा चरण अवस्थित
अपना निर्गुन ज्योति रूप में ।
जेकरा जानल बहुत कठिन बा
पृथा पुत्र ! कवनो स्वरूप में ।।४२।।

१७—नाभी, ढोढी, चक्रमध्य

एकादश अध्याय

विश्वरूप दिखलावे हेतुक
अर्जुन के विनती सुनके।
विपुल विकट विकराल रूप सभ
थइले केशव चुन चुन के॥
छटा निहार अर्जुन भय खा के
धइले त्वर हम जनलीं देव!
राउर महिमा आ विभूति के
पूरा पूरा आजे भेव[1]
किन्तु प्रार्थना अब बाटे कि
पूर्व रूप के करलीं धारन।
जेहमें भय से मुक्ति मिले आ
दुःचिन्ता के होय निवारन॥

१— रहस्य

—::०::—

अर्जुन उवाच

मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम्।
यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम॥१॥

हमरा हित खातिर रउआ जे
देलीं वर अध्यात्म के ज्ञान।
ओकरा के करि श्रवन जनार्दन !
भइल हमार दूर अज्ञान ।।
मन से जात रहल भ्रम बिलकुल,
शुद्ध रूप राउर हम जनलीं।
आत्मा स्वयं न कर्ता-कर्म हऽ
एह तथ्य के अब हम मनलीं ।।१।।

भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया।
त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाव्ययम् ।।२।।

एवमेतद्यथाऽऽत्थ त्वामात्मानं परमेश्वर।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम ।।३।।

चर भा अचर जगत के उद्भव
अउर विनाश के वर्णन सुनि।
आउर रउरी महिमो के तऽ
गाथा सुनि, आ सभ कुछ गुनि ।।
समुझत बानीं कमलनयन ! अब
कहसन रउआ अपने बानीं।
ज्ञान-शक्ति-बल-तेज युक्त, वर
रूप लखल अब चाहत बानीं ।।२-३।।

मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो।
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम् ।।४।।

संभव यदि हो दर्शन दीहल
इच्छा पूर्ण करीं भगवान !
राउर रूप अविनाशी देखल
चाहत बानीं कृपानिधान ! ।।४।।

श्रीभगवानुवाच

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रश: ।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च ।।५।।

सुनि के वचन विनीत पार्थ के
कहले दिव्यरूप परमेश ।
रूप हमार हजारों देखऽ
भिन्न भिन्न अर्जुन सभ भेष ।।५।।

पश्यादित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा ।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत ।।६।।

वसु-रुद्र आदित्य-मरुत आ
अश्विनी कुमारन्ह के देखऽ
अनदेखल सभ चमत्कार के
अब अपनी अँखियन्ह से पेखऽ ।।६।।

इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम् ।
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यं द्रष्टुमिच्छसि ।।७।।

हमारा एह शरीर में अर्जुन !
देखऽ जे बा चाह तँहार ।

एके जगहा सभ कुछ लउकी
चर अचर आ सभ संसार ॥७॥

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥८॥

किन्तु एह अपना अंखियन्ह से
देखि न सकबऽ रूप हमार ।
दिव्य नयन देत हम बानीं,
देखऽ योग, विभूति निहार ॥८॥

संजय उवाच

एवमुक्त्वा ततो राजन् महायोगेश्वरो हरिः ।
दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम् ॥९॥

अइसन कहि भगवान कृष्णजी
परम विभूतिमय आपन रूप ।
अर्जुन के देखवले राजन !
अलौकिक आपन दिव्य स्वरूप ॥९॥

अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुत दर्शनम् ।
अनेक दिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥१०॥
दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम् ।
सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम् ॥११॥
दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ।
यदि भाःसदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः ॥१२॥

तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा ।
अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तथा ।।१३।।
ततः स विस्मयाविष्टो दृष्टरोमा धनञ्जयः ।
प्रणम्य शिरसा देव कृताञ्जलिरभाषत ।।१४।।

अनेक आंखि-मुंह-नाक तथापि
अनेक दृश्य सुन्दर स्वरूप
अनेक दिव्य आभूषण धरले
शस्त्र सुसज्जित रहे ऊ रूप ।।१०।।
दिव्य वस्त्र से रहे अलंकृत,
पुष्पमाल से अति सज्जित ।
सुन्दर गन्धयुत लेप वदन पर
रहे चित्त के करत चकित ।।
विराटरूप श्रीपति के राजन् !
रहे अचम्भा से संयुक्त ।
दीप्तिमान हर ओरि वदन ऊ
चमकत श्री से होके युक्त ।।११।।
मुखमण्डल का चमक दमक के
वर्णन का हम करीं नरेश !
जो हजारहो सूर्य साथ में
उगसु व्योम में हे भूपेश !
तबो ओइसन दीप्ति फैली
जइसन छिटकल ओ जग राजन !
दिव्य ज्योति-आभा-प्रकाश के
पुंज प्रदीप्त रहे अति रञ्जन ।।१२।।
परमदेव के ओह देहि में
एक जगह पर कुल संसार ।

देखले पृथापुत्र हो विस्मित
प्रभु के रूप अनेक प्रकार ।।१३।।
तन में कंपन, रोआँ सिहरल,
सिर झुकाइ, करजोड़ि सभक्ति
कहले पार्थ विनम्र भाव से
मधुसूदन में रखि अनुरक्ति ।।१४।।

अर्जुन उवाच

पश्यामि देवांस्तव देव देहे सर्वांस्तथा भूतविशेषसंघान् ।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थमृषींश्च सर्वानुरगांश्चदिव्यान् ।।१५।।

रउरा तन में देखत बानीं
सब देवन्ह के, प्राणिन्ह के
कमलासन पर स्वयं ब्रह्म के
ऋषि-मुनिगन, सब साँपन्ह के ।।१५।।

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम् ।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं पश्यामि विश्वेश्वरविश्वरूपम् ।।१६।।

हे विश्वेश्वर, विश्वरूप हे !
जगह जगह पर वदन अनेक ।
भुजा-पेट-अँखिया अनेक गो
देखत बानीं, रूप न-एक ।।
आदि, मध्य भा, अन्तो के तऽ
कहूँ दरश ना बाटे देव !
जहाँ आँखि दौरत बाड़ी सऽ
उहाँ मनोहर रूप[२] अभेव ।।१६।।

२—कृष्ण रूप

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च
तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम् ।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ताद्
दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ॥१७॥

सिर पर आभूषण किरीट, आ
करमें चक्र-गदा राजत ।
हर ओरि देहि के तेजपुञ्ज
सुषमाखनि[3] अइसन साजत ॥
रूप आगि आ सूर्य सदृश वा
चमकत हरदम चारो ओरि ।
नज़रि न कतहीं ठहरति, बाटे
छवि के बड़ए ओरि न छोरि ॥१७॥

३—मनोहरता

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यम्
त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता
सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ॥१८॥

रउआ प्रभु ! अक्षर, अविनाशी,
परब्रह्म, परमात्मा खुद ।
संसृति के एकाश्रय रउआ,
अनादि धर्मरक्षक, सुहृद ॥
पुरुष सनातन, विश्वशिरोमणि,
जगन्नियन्ता, नित्यस्वरूप ।
जवन रूप में देखल चाहीं,
ओह रूप में लउके रूप ॥१८॥

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्यम्

अनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम् ।

पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रम्

स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम् ॥१९॥

आदि, मध्य आ अन्तहीन हे !
प्रभुता शक्ति राउर अनन्त ।
भुजा कई बा हे परमेश्वर !
ना बड़ुए महिमा के अन्त ॥
चाँद-सूरज अइसन बा चक्षु
आगिन अइसन चमकत मुख ।
अपना ओज-तेज से दुनियाँ
तपा रहल बानीं सम्मुख ॥१९॥

द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि

व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः ।

दृष्ट्वाऽद्भुतं रूपमुग्रं तवेदम्

लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन ॥२०॥

व्योम-भूमि के बीच शून्य आ
सभन्हि दिशा में रउआ एक ।
व्यापि रहल बानीं परमेश्वर !
देखि चकित बा जन प्रत्येक ॥
रूप अलौकिक बहुत भयंकर
देखि-देखि के तीनों लोक

काँपत बड़ए हे परमेश्वर!
व्यथित चित्त के सकत न रोक ।।२०।।

अमी हि त्वां सुरसंघा विशन्ति
केचिद्भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति ।

स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसंघाः
स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः ।।२१।।

देखीं देव समूह शरन में
रउरा कइसे आवत बाड़े ।
कतना डरि के जोर-जोर से
गुन राउर वर गावत बाड़े ।।
सिद्ध, महर्षिगन झुँड बाँधि के
स्वस्ति बचन के कहत समोद ।
भिन्न-भिन्न से स्तुति करि राउर
बाढ़त बाड़े खूब प्रमोद ।।२१।।

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या
विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च ।

गन्धर्व यक्षासुरसिद्धसंघा
वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे ।।२२।।

३—साध्य नामक देवगन

रुद्रादित्य-वसु-सिद्ध - साध्यगन[३]
विश्वेदेव, अश्विनी कुमार ।
मरुत-पितर - गन्धर्व - यक्ष आ
राक्षस देखत चकित निहार[४] ।।२२।।

४—गौर से देख

रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं, महाबाहो बहुबाहूरुपादम् ।
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं दृष्ट्वालोकाः प्रव्यथितास्तथाहम् ।।

बहुत नेत्र, मुख, उदर, बाहु आ
जंघा, पैर, भयंकर डाढ़[५] ।
देखि भयावह रूप मुनीश्वर !
सभे डरल बा, हमहुँ प्रगाढ़[६] ।।२३।।

५—चट्ट, बड़े चौड़े दाँत
६– बहुत

नभः स्पृशं दीप्तमनेकवर्णं
व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम् ।
दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा
धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो ।।२४।।

फैलल मुख अति, नयन विशाल
दिव्य कान्तिमय देखि स्वरूप ।
सच पूछीं तऽ गगन छुअत-सा
गिरि अस लखिके राउर रूप ।।
भय से अन्वित उर हमार बा,
धीरज टूटि गइल बा सुन्द !
शान्ति चित्त से अलग भइलि बा
बिलकुल जानीं साच मुकुन्द ! ।।२४।।

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि
दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि ।
दिशो न जाने न लभे च शर्म
प्रसीद देवेश जगन्निवास ।।२५।।

प्रलयकाल में जइसे कालाग्नि
भस्मीभूत करि देले लोक।
ओसहीं डाढ़न्ह युत मूख लखि के
हमार दुःख-सुख बा सम-थोक ॥
भय से दिशा न दीखत बाटे,
ज्ञानशून्य बा हृदय हमार।
मिलत अशान्ति ही बड़ुए मानीं
दया करीं अब नन्द कुमार ॥२५॥

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः
सर्वे सहैवावनिपालसंघैः।

भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथा सौ
सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः ॥२६॥

वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति
दंष्ट्राकरालानि भयानकानि।

केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु
संदृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः ॥२७॥

जवन हाल हम देखत बानीं
शत्रुपक्ष के हे भगवान!
भय से चित उद्विग्न भइल बा
का कहीं हम कृपानिधान!
चाचा के सब वीर पुत्र आ
भीष्म, द्रोण, बलजेता कर्ण।

७—कान्तिहीन

मुख में रउरा घुसत जात झट
अवनिपाल सभ होय विवर्ण[७] ॥
हमरो दल के प्रमुख वीर गन
ओसहीं मानीं हे परमेश !
कठिन दाँतयुत मुख में रउरा
वाड़े बिन क्रम करत प्रवेश ॥
ओह में कतना दाँत बीच में
चिपटल वाड़े हे मथुरेश !
कतना के सिर चूर-चूर वा
दाँत बीच में भइल सुरेश ! ॥२६-२७॥

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः
समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति ।

तथा तवामी नर लोकवीरा
विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति ॥२८॥

८—स्वच्छ तरंग

जइसे नदियन्ह के जल दउरे
वारिधि-विमलवीचि[८] के ओरि ।
ओसहीं शूरवीर गति बाटे
रउरा मुख - समूह के खोरि ॥२८॥

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा
विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः ।

तथैव नाशाय विशन्ति लोका—
स्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः ॥२९॥

लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ता—
ल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः ।
तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं
भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो ।।३०।।

जइसे टिड्डी-शलभ-पतिंगा
कूदि आगि में देले जान
ओइसे रउरा मुँह में जाके
लोग गँवावत आपन प्रान ।।२९।।
रउआ सब के कचरत बानीं
चाटत बानीं उनुकर रक्त ।
उग्र कान्तितेज से रउरा,
बाटे संसृति अति संतप्त ।।३०।।

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो
नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद ।
विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यम्
न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ।।३१।।

अइसन रूप भयानक कइले
रउआ के ? बतलाईं त्वर ।
नतमस्तक हम पूछत बानीं
सत्वर कृपा करीं प्रियवर !
आदिपुरुष के जानत नइखीं,
कुछुओ राउर ज्ञान न बा
हमे बताईं जल्दी से अब
कवन रूप ई राउर बा ।। ? ।।३१।।

श्रीभगवानुवाच

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो
लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः ।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे
येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ।।३२।।

प्रश्न सूनि के पृथापुत्र के
कहले केशव कृष्ण मुरारी ।
लोकविनाशक विकट काल हम
ध्वंश करे के बा तैयारी ।।
शत्रु - सैन्य में खड़ा वीर जे,
तहरा बिना मरलहूँ मरिहें ।
हमरा मुँह के प्रलयागिन में
निश्चय बा कि सभनी जरिहें ।।३२।।

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व
जित्वा शत्रुन्भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम् ।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव
निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ।।३३।।

मारि चुकल वानीं पहिले हम
रन में सभ एह लोगन्ह के ।
निमित्त मात्र युध करऽ यशस्वी,
भोगऽ राज्य मारि शत्रुन्ह के ।।३३।।

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च
कर्णं तथाऽन्यानपि योधवीरान् ।

मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठाः
युद्धस्व जेतासि रणे सपत्नान् ।।३४।।

कर्ण, जयद्रथ, भीष्म, द्रोण आ
आन बहुत-सा योधा वीर।
हमरे हाथे अन्तर्गति के
पवले बाड़े हे धनुवीर!
बिन डर, भय के तजि कायरता
युद्ध करऽ तू निःशंकोच।
करऽ नाश इन लोगन्ह के अब
रहऽ न कायर अवरू पोच[१०] ।।३४।।

१०—निर्बल

संजय उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य
कृताञ्जलिर्वेपमानः किरीटी।
नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णम्
स गद्गदं भीतभीतः प्रणम्य ।।३५।।

बात सूनि केशव के अर्जुन
काँपत उठि के झट कर जोड़।
कहले गदगद हो महीप से
दुनियां खुश बा बहुत, बेजोड़ ।।३५।।

अर्जुन उवाच

स्थाने हृषिकेश तव प्रकीर्त्या
जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च।

रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति
सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः ।।३६।।

रउरी अद्भूत महिमा कारन
भक्ति में बाड़े सबनी लीन ।
राक्षस डरि के भागत बाड़े
दशो दिशा में, मायाधीन !!
सिद्ध साधु सभ शीश झुकावत
करत भक्ति से नमन प्रणाम ।
रउए में चित बड़ुए सभके,
रउआ तऽ सभ के सुरधाम ।।३६।।

कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन्
गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादि कर्त्रे ।
अनन्त देवेश जगन्निवास
त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् ।।३७।।

ब्रह्मो के हे जन्म प्रदाता !
परब्रह्म, नित्य, अविनाशी !
सत्य-असत्य के परे ब्रह्म आ
सच्चिदानन्द बलराशी !
जब रउए सभ कुछए बानी !
करे न काहे लोग प्रणाम ।
हे अनन्त, देवेश, महात्मा,
जगन्नियन्ता, सुरपति धाम ! ।।३७।।

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणः
त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।

वेत्ताऽसि वेद्यं च परं च धाम
त्वया ततं विश्वमनन्त रूप ।।३८।।

आदि देव आ पुरुष सनातन,
संसृति के आश्रय, आधार ।
सब कुछ के जनवैया रउआ,
रउए से जग के विस्तार ।।३८।।

वायुर्यमोग्निर्वरुणः शशांकः
प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः
पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ।।३९।।

वरुण, अग्नि यम, वायु, चंद्र आ
स्वयं प्रजापति हे परब्रह्म !
नमन सहस्र स्वीकार करीं हे !
जगपालक, जगती के स्तंभ ! ।।३९।।

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते
नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व ।
अनन्तवीर्यामित विक्रमस्त्वम्
सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ।।४०।।

चहूं ओरि जब व्यापत बानीं
एक तरह से हे मथुरेश !
आगे-पीछे नमन एह से,
नमन सभत्तर से भूतेश !

अनन्त शक्ति आउर साहस के
११—चिह्न रउआ बानीं एक प्रतीक[११]
सभ में व्याप्त सदृश भइला से
१२—सबके समूह रउआ बानीं सर्ब अनीक[१२] ॥४०॥

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तम्
हे कृष्ण हे यादव हे सखेति
अजानता महिमानं तवेदम्
मया प्रमादात्प्रणयेन वापि ॥४१॥

यच्चाऽवहासार्थमसत्कृतोऽसि
बिहारशय्यासनभोजनेषु ।
एकोऽथवाऽप्यच्युत तत्समक्षम्
तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ॥४२॥

विन रउरी महिमा के जनले
शयन, खेलि, भोजन, बइठक में ।
'यादव, कृष्ण, सखा' कहि के हम
सदा पुकरलीं भ्रांति-प्रेम में ॥
कबो अकेले, कबो साथ में
मित्र वर्ग के हे केशव !
ऊंच-नीच जो कुछ हम कहलीं
सखा, मित्र केशव, यादव ॥
क्षमा करीं सभ कुछु परमेश्वर !
बल अनन्त के परिचायक !
जगती के हर प्राणिवर्ग क
मालिक, अधिपति, अधिनायक !॥४१-४२॥

पिताऽसि लोकस्य चराचरस्य
त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् ।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो
लोकत्रयेप्यप्रतिमप्रभावः ॥४३॥

एह चराचर जग के रउआ
एकमात्र बानीं रचवैया ।
पिता, पूज्य गुरु जग के बानीं
ना त्रिलोक में सम करवैया[13] ॥४३॥

१३—समदर्शी बराबरी करे वाला ।

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायम्
प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम् ।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥४४॥

अतः पूज्य स्वीकार करीं अब
नमन शुद्ध साष्टांग हमार ।
क्षमा करीं सभ भूलचूक के
अनुचित सभ हमार व्यवहार ॥
पीछे के सभ दोष भूला दीं
हे त्राता एह जगती के ।
जइसे पिता, मित्र आ स्वामी
क्षमा करे, सुत, मित्र, सती के ॥४४॥

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा
भयेन च प्रव्यथितं मनो मे ।

तदैव मे दर्शय देवरूपं
प्रसीद देवेश जगन्निवास ! ॥४५॥

लखि अनदेखल रूप के यद्यपि
मन से बानीं बहुत प्रसन्न।
तबहूँ डर से चित व्याकुल बा
सोचि अवस्था विकट विपन्न॥
एह से कृपा तुरत अब करि के
आपन पहिला रूप देखाईं
जेह से शान्त-सुचित मन होख
आगे कुछु हम भीत न पाईं ॥४५॥

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्त-
मिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन
सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते ॥४६॥

चाहत बानीं राउर देखल
रूप चतुर्भुज हे भगवान!
सिर पर मुकुट गदा-चक्र-धर
रूप दिखाईं कृपानिधान! ॥४६॥

श्रीभगवानुवाच

मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं
रूपं परं दर्शितमात्मयोगात्।
तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं
यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम् ॥४७॥

तहरा से खुश होके अर्जुन !
अपना योगशक्ति के बल।
विकट रूप देखवलीं आपन
जे ना पहिले के देखल ॥४७॥

न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानै-
र्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः ।
एवं रूपः शक्य अहं नृलोके
द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर ! ॥४८॥

वेदपाठ, तप यज्ञ, दान भा
अग्नि होत्रादि का बल पर।
केहू नइखे मर्त्यलोक में
जे देखल हमके द्रुततर ॥४८॥

मा ते व्यथा मा च विमूढ़भावो
दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ्ममेदम् ।
व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं
तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य ॥४९॥

रूप भयंकर लखि हमार तू
मत घबड़ा, ना तनिक डेरा।
निर्भय, खुशदिल फिनु हमार तू
पूर्व रूप लखि पार्थ। अगरा ॥४९॥

संजय उवाच

इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा
स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः ।

आश्वासयामास च भीतमेनं
भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा ॥५०॥

अइसन कहि श्रीकृष्ण जी,
आपन पहिला रूप।
देखवले भयभीत के,
धीरज देइ अनूप ॥५०॥

अर्जुन उवाच

दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन ।
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः ॥५१॥

देखि कृष्ण के मनुज रूप में
कहले पार्थ हे कृपानिधान !
सौम्यमूर्त्ति के पाइ विकलता
दूर भइलि, चित शान्त महान ॥५१॥

श्रीकृष्ण उवाच

सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम ।
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकांक्षिणः ॥५२॥

वाणी सुनि के पार्थ के
कहले प्रभु हे वीर !
देखि न सकिहें रूप ई
१४—व्यक्ति कवनो अन्य शरीर[१४] ॥
एह चतुर्भुज रूप के
देखे खातिर देव ।

कइले अथक परिश्रम,
पवले नाहीं भेव ।।५२।।

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया ।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ।।५३।।
भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन ।
ज्ञातुः द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ।।५४।।

वेद, दान, तप, यज्ञ से
बा अलभ्य ई रूप ।
तत्त्वज्ञानी योग्य बा
देखे के इ सरूप ।।
एकनिष्ठ[१५] जे भक्त बा
ऊहे केवल पार्थ !
एह चतुर्भुज रूप के
देखि सके निःस्वार्थ ।।५३-५४।।

१५—अमन्य

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः संगवर्जितः ।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ।।५५।।

आसक्ति रहित जे व्यक्ति
बा हमार ऊ भक्त ।
वैर न राखे आन से,
हमरा में अनुरक्त ।।
परम पुरुष जाने हमें,
करे कर्म मम हेत ।
निश्चय हमरा के करे
ऊहे व्यक्ति उपेत[१६] ।।५५।।

१६—प्राप्त

द्वादश अध्याय

या एही अध्याय में, भक्ति योग के बात ।
रउआ निश्चय ध्यान दीं, मन में अति अगरात ।।

—::०::—

अर्जुन उवाच

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते ।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ।।१।।

विश्वव्याप्त श्री कृष्ण के
मधुर वचन सुनि पार्थ ।
पूछि बइठले जल्दिए
सविनय प्रश्न हितार्थ ।।
रउआ में लवलीन जे
सगुण उपासक भक्त ।
आ अविनाशी मानिजे
पूजे हो अनुरक्त ।।
एह दूइ में श्रेष्ठ के
हमें बताईं ईश ! ।

मन में जे सन्देह बा
दूरि करीं जगदीश ! ॥१॥

श्रीभगवानुवाच

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ।
श्रद्धया परयोपेतास्ते युक्ततमा मताः ॥२॥

प्रश्न पार्थ के युक्ति-युक्त सुनि
कहले जल्दी अविनाशी ।
उचित प्रश्न तू कइलऽ अर्जुन !
हमरा मन के उर के वासी !
भक्तियोग में निरत रहे जे,
आ हमरे में लीन सतत ।
करे उपासना भक्ति से वर
हो के हमरा में अनुरक्त ॥
भक्ति में हमरा उन्हे श्रेष्ठ बा,
अइसन जानऽ हे कुरुवीर ।
पहिले से ई बात व्यक्त बा
सोचि समुझिलऽ अर्जुन धीर ॥२॥

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥३॥
संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहितेरताः ॥४॥

जे अपना इन्द्रियसमूह के
वश में अपना करि के पार्थ !

प्राणिमात्र के वर शुभचिन्तक
आ समदर्शी होइ यथार्थ ।।
एकनिष्ठ हो पूजे ध्रुव के,
अनिर्देश्य, अक्षर, अचिन्त्य के ।
सगरे स्थित, अव्यक्त, अचल आ
सच्चिदानन्द कूटस्थ के ।
ऊहो श्रेष्ठ योगी अवश्य हउ
पावेला निश्चय हमके ।
जो अर्चना करे प्रेम से
१—लीन होके सदा एक रस में रम[1] के ।।३-४।।

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्त चेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ।।५।।

२—अव्यक्तरूप में ब्रह्म
पर जेकर चित उर अक्षर[2] में
सदा लीन होई अर्जुन !
उनका तऽ छोड़हीं के परीऽ
तन के ममता ओही जून ।।
पर देही का तन के ममता
छोड़ल बाटे बड़ा कठिन ।
जबतक ममता रही देहि से
३—कठिन, दुर्लभ परब्रह्म तक पहुँचल क्षीन[3] ।।५।।

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ।।६।।
तेषामहं समुद्धर्त्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ।।७।।

लेकिन ज ब्रह्म के सभ से
उत्तम जानि भजी हम के।
सभे कर्म हमरा में अर्पित
करिए दीही ऊ रम[४] के॥
हम उनका के बिना देरि के
मृत्युलोक से लेबि बचाय।
जन्म-मरन से मुक्ती खातिर,
अउर कहाँ बा अन्य उपाय॥६-७॥

४—लीन हो के

मय्येव मन आधत्स्व मयिबुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः॥८॥

एह से अर्जुन तू हमरा में
आपन बुद्धि रमा दऽ
भा अपना चित-मन के अर्जुन!
हमरे में तू जमा दऽ।
मरला पर निश्चय तू पइबऽ
बसती हमरा ढिग[५] हे पार्थ!
एह में कुछ सन्देह कहाँ बा
स्थिति बा बिलकुल ठीक, यथार्थ॥८॥

५—पास

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम्।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय॥९॥

ठीक तरह से चित तोहार जो
रमि न सके जी! हमरा में।
अभ्यास योग का जरिए तू
झट करऽ यत्न एकरा में॥९॥

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरो भव ।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि ।।१०।।

जो अभ्यासो संभव ना हो,
वर्म करऽ हमरे खातिर ।
अइसन कइले से नू अर्जुन !
सिद्धि प्राप्ति होई आखिर ।।१०।।

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः ।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ।।११।।

अगर कर्म ना होइ सके तब
चित के अपना वश में क के ।
कर्म फलेच्छा त्यागि पार्थ ! तू
रहऽ शरन में हमरे आ के ।।११।।

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते ।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ।।१२।।

अभ्यास से अच्छा ज्ञान बा,
ज्ञान से अच्छा बाटे ध्यान ।
ध्यान से कर्मफल त्याग निमन,
त्याग से होय शांति आदान ।।१२।।

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ।।१३।।
सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढ़निश्चयः ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ।।१४।।

अइसे जेकरा शान्ति मिलल बा
जे बा वैर-द्वेष से हीन।
सकल मित्र, ममता-घमंड-रित,
जे बा सदय, स्वार्थ से दीन ।।
सुख-दुख के जे सम समुझत बा
बाटे तुष्ट शान्त आ दृढ़।
हमरा में जे लीन सतत बा,
ऊ हमार बा प्रिय सुदृढ़ ।।१३-१४।।

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ।।१५।।

जेकरा से ना दुःख जगत का,
जे ना दुखी स्वयं जग से।
हर्ष, अमर्ष,[६] भय, डाह रहित जे
प्रिय हमार ऊ बा भव[७] से ।।१५।।

६—क्रोध
७—संसार

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ।।१६।।

सभ प्रकार से चाह रहित जे,
योग्य, शुद्ध निष्पक्ष, सुचित।
सभ उद्यम-धन्धा के त्यागी,
पर के लखे न जे[८] अनहित ।।१६।।

८—बुराई

ये न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ।।१७।।

जेकरा हर्ष द्वेष, चिन्ता भा
कांक्षा ना कुछु होवे पार्थ।
शुभ-अशुभ ना सोचे कबहीं
ऊ हमार प्रिय-भक्त यथार्थ ॥१७॥

यः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः ॥१८॥

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येनकेन चित् ।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ॥१९॥

शत्रु-मित्र, अपमान-मान के
जे मानव समुझेला एक।
सर्दी-गर्मी, सुख-दुख, निन्दा
स्तुति में जाने भेद न नेक[९] ॥
कबहो वस्तु से प्रेम न राखे,
रहे सर्वदा रूप आ शान्त।
कतहीं घर ओकर ना होखे,
चित-बुद्धि ना होय अशान्त ॥
कुछुओ पा के तुष्ट रहे, जो
ममता के होखे ना नाम।
ऊ हमार प्रिय भक्त अवश्य वा,
अइसन नर होला निष्काम ॥१८-१९॥

९—तनिक भी

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते ।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियः ॥२०॥

अमृत अइसन कथित नियम के
पालक जे होई योगी ।
श्रद्धा से पूजी हमरा के,
होई हमार संयोगी ।।
एह से मुक्ति भा विष्णुधाम के
जे हो वर अभिलाषी ।
उनका चाहीं पार्थ ! अवश्ये
भइले नियम – उपासी ।। २०।।

त्रयोदश अध्याय

—::०::—

एह अध्याय में वर्णित बाटे, क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ आ आत्मज्ञान
प्रथम दुई से जानीं सभनी, अपरा-परा के होखे भान ।।
अपरा, जड़ संसार के कारन, परा से जीव के होय सु-बोध ।
प्रकृति के ई पृथक रूप दू, एकर कर लीं सुन्दर बोध ।।
तबहीं जानबि आत्मज्ञान का ? का होला कब एकरा से ।
बिना आत्मज्ञान का भइले, उद्धार कहीं, केकरा से ?
आत्मेज्ञान का भइला पर तऽ अज्ञान के होला नाश ।
एकरा नष्ट भइला पर ही तऽ तत्वज्ञान-बोध हो खास ।।
ब्रह्म-जीव में कुछ विभेद ना। एकरे नाम हऽ तत्वज्ञान ।
जे समुझल उलटा कुछ एकरा, भइल कहाँ ओके अभिज्ञान ।।

श्रीभगवानुवाच

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ।।१।।

एह शरीर के नाम क्षेत्र हऽ
मालिक के नाम क्षेत्रज्ञ ।

एकर निर्णय कइले बाड़े
तत्वज्ञाता अर्जुन ! विज्ञ ।।१।।

क्षेत्रज्ञंचापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ।।२।।

सभ शरीर के क्षेत्रज्ञ-जीव
हमरा के तू जानऽ पार्थ ।
क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ के ज्ञान वा
हमरा मत में ज्ञान यथार्थ ।।२।।

तत्क्षेत्रं यच्च यादृक् च यद्विकारि यतश्च यत् ।
स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे शृणु ।।३।।

एह क्षेत्र के मतलब का ह?,
का एकर ह धर्म, सुभाव ।
कवन कवन दोष एकरा में
कइसन एकर बल-प्रभाव ।।
कइसे निर्मित भइल क्षेत्र वा,
आ क्षेत्रज्ञ के कवन सरूप ।
ई सब के थोरे में अर्जुन !
सुनि लऽ जे जे वा प्रतिरूप ।।३।।

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक् ।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ।।४।।

महर्षि वशिष्ठ, पराशर आदि
योगशास्त्र में इनिकर रूप ।

विशद रूप से कहले बाड़े,
ऋक् साम वेदादि स्वरूप ।।
कवि व्यासरचित ब्रह्म सूत्र में
युक्तियुक्त आ वर्णित तत्व ।।
स्पष्ट उक्ति सर्वत्र कथित हा,
ओकर नइखे कहीं समत्व ।।४।।

महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च ।
इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः ।।५।।

इच्छा-द्वेषः, सुखंदुःखं संघातश्चेतना धृतिः ।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ।।६।।

भूमि अग्नि-जल-पवन-आकाश,
ईहे पांच ह महाभूत ।
१—सत-रज-तम सांख्ययोगियों के द्वारा निर्णीत
तीनों[1] गुन अहंकार आ बुद्धि
आठो ई प्रकृति के दूत ।।
दशो इन्द्रियन आ पाँच विषय
अउर एक जो बाटे मन ।
एह चौबीस तत्व से समुझऽ
निर्मित इ बा अर्जुन ! तन ।।५।।
"इच्छा-द्वेष सुख-दुख, शरीर
धैर्य, चेतना जे बा सात ।
क्षेत्र विकार ह, सुनऽ धनञ्जय !
२—उत्पन्न
एही क्षेत्र के ई सब जात[2] ।।६।।

अमानित्वमदंभित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम् ।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ।।७।।

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च ।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥८॥

असक्तिरनभिष्वंगः पुत्रदारगृहादिषु ।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टापिष्टोपपत्तिषु ॥९॥

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जन संसदि ॥१०॥

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥११॥

असम्मान, अहिंसा, पविता
गुरुसेवा, क्षान्ति,[३] सरल स्वभाव ।
चित्त स्थिरता, आत्मविनिग्रह[४]
अउरू दम्भाचरण - अभाव ॥७॥
इन्द्रिय विषय में अनासक्ति
आउर अहंकार से विरति !
जन्म-मृत्यु आ वृद्धावस्था,
रुज-दुख दोष चिन्तत में रति ॥८॥
वनिता, पुत्र, धन, गृहादि में
ममता के कोरा पृथकत्व ।
प्रिय आउर अप्रिय वस्तु में
अर्जुन ! राखल भाव-समत्व ॥९॥
अनन्ययोग अथवा भक्ति से
हमरा में होखल तल्लीन ।
एकान्त जगह में बास कइल,
सांसारिक संगति से हीन ॥१०॥

३— दोसरा द्वारा दुख देलो पर रंज ना भइल
४—शरीर आ मन के सब ओर से हटा के ठीक राह पर ले आइल ।

अध्यात्म ज्ञान में नित्यभाव
अउर मोक्ष के मानल श्रेष्ठ।
५—बीसोगुण ईहे सबगुण[५] ज्ञान सम्पदा,
विपरीत सभ अज्ञान, न इष्ट ।।११।।

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते ।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ।।१२।।

जे जानल आवश्यक बड़ुए,
जे से हो मानव के मुक्ति।
ऊ अनादि, परब्रह्म स्वयं बा
ना सत् आ न असत् ई उक्ति ।।१२।।

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वत्रः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ।।१३।।

६—परब्रह्म के उनके[६] तन हर ओरि हाथ बा,
पाँव, आँखि, सिर, कान आ मुख।
संसृति में सर्वत्र व्याप्त हो
बाड़े स्थित सभ में सम्मुख ।।
उनका सत्ता से हर इन्द्रिय
आपन काम करे ही नित।
बिन ब्रह्मसाहाय्य के संभव
नइखे कबहीं कवनो कृत ।।१३।।

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ।।१४।।

बाड़े ऊ जो इन्द्रिय-हीन
तबहूँ सभ के गुण से युक्त।
जो विरक्त, निर्लिप्त सभे से
तबहूं पोषण से न विमुक्त ।।
सतरजतम से रहित सर्वदा
तबहूं भोक्ता सभ गुन के।
विषयजनित सुख दुःखानुभवी
आउर कारण चेतन के ।।१४।।

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत् ।।१५।।

प्राणिमात्र के बाहर भीतर
चर बाड़े आ अचरो खुद।
अतना सूक्ष्म स्वयं बाड़े कि
दृष्टि गम्य नइखनि मौजूद ।।
केवल तीव्र बुद्धि युत केहू
जानि सकेला उनुका के।
बहुत दूरि भा बहुत पास में
योगी पावे उनका के ।।१५।।

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु[७] प्रभविष्णु[८] च ।।१६।।

७—विनाशक
८—पैदा करे वाला

यद्यपि उनुकर बाँट न संभव
तबहूँ सभ में बँटल समान।

९—नाश कर वाला
१०—मा जननी
११—जनक, पिता

सभके पालक, घालक[९] सभके,
जनयित्री,[१०] जनयिता[११] महान ।।१६।।

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते ।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य धिष्ठितम् ।।१७।।

जाने लायक ब्रह्म ई,
परम ज्योति के सार ।
एही से अज्ञान से
परे कहाले यार !
स्वयं ज्ञान के मूल ई,
ज्ञानी के ई प्राप्त ।
सब प्राणिन्ह के हृदय में
बाड़े खुद में व्याप्त ।।१७।।

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः ।
मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ।।१८।।

क्षेत्र, ज्ञान, क्षेत्रज्ञ के
वर्णन सुनि संक्षिप्त ।
पावे भक्त हमार सभ
१२—मोक्षपद
१३—सम्मानित भाव[12] हमार अक्षिप्त[13] ।।१८।।

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि ।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान् ।।१९।।

प्रकृति-पुरुष दूनों अनादि बा,
दूनों पर ईश्वर-अधिकार ।
एही दूनों का जरिए तऽ
१४—ईश्वर जन्म देनु सबके करतार[14] ।।१९।।

कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते ।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ।।२०।।

पंचभूत-निर्मित शरीर ई
'कार्य' नाम से बा प्रख्यात।
इन्द्रियगन, मन, बुद्धि, अहंकार
ई तेरह हऽ "करण" विख्यात ।।
कार्य-करण के जन्म प्रकृति से
अउर प्रकृति ई सिरजनहार।
'पुरुष' नाम क्षेत्रज्ञ-जीव के
ईहे दुख-सुख भोगनहार ।।२०।।

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान्।
कारणं गुणसंयोगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ।।२१।।

पुरुष प्रकृति के रहि अधीन में
भोगेला सुखदुखादि गुन।
प्रकृति गुणन्हि के ऊ सुसंग से
लेला जन्म सदा अर्जुन
ऊँच गुणन्ह के सँग के कारन
ऊँच योनि में होला जन्म।
नीचा के संयोग से किन्तु
नीच बास होला आजन्म ।।२१।।

उपद्रष्टाऽनुमन्ता च भर्त्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः ।।२२।।

एह शरीर में रहिए के तऽ
होला पुरुष[१५] सलहिया पार्थ!
आउर साक्षी, पालक, भोक्ता
परमेश्वर, परमात्म यथार्थ ।।२२।।

१५—भोक्ता

य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह ।
सर्वथा वर्त्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते ।।२३।।

जे जाने गुनसाथ प्रकृति के,
पुरुष-जीव के एह प्रकार ।
एह संसृति में रहियो के ऊ
हो ना उत्पन्न बारंबार ।।२३।।

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना ।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे ।।२४।।
अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वऽन्येभ्य उपासते ।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः ।।२५।।

कतना लोग आत्मा के देखे
अपना उर में ध्यान लगा ।
कतना देखे सांख्य योग से
आत्मा में अति चित्त भिँगा ।।
कतना निष्काम कर्मयोग से
ईश्वर हेतुक करि के कर्म ।
केहू कसहुँ देखी, पाई
सभके बाटे एके मर्म ।।२४।।
लेकिन जेबा मन्दबुद्धि के
कथितयोग से रहि अनजान ।
तत्वज्ञानिए से सुनि कर ऊ
पूजन करे हमार सुजान ! ।।
अइसने श्रुति परायण अर्जुन !
करि उपासना श्रद्धा से ।

निश्चय में एह भगसागर के
१६—निभय होके तरि जाले विश्रब्धा[16] से ॥२५॥

यावत्सँजायते किंचित्सत्त्वं स्थावरजङ्गमम् ।
क्षेत्रक्षेत्रमसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ ॥२६॥

स्थावर-जंगम जे प्राणी बा
उत्पन्न होला पृथा कुमार !
१७—प्रकृति पुरुष क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ[17] का संयोगे से
१८—विश्वास होलः संभव हो एतबार[18] ॥२६॥

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ॥२७॥
समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्
न हिनस्त्यात्मनाऽऽत्मानं ततो याति परां गतिम् ॥२८॥

प्राणिमात्र में स्थित समान जे
देखि लिहल परमात्मा के।
१९—प्राणिमात्र उनुका[19] मरलो पर ओइसन के
देखल अक्षर आत्मा के ॥
सच्चा तत्व के देखल ऊहे,
ईहे तथ्य बा समुझऽ पार्थ ।
पर जे ईश्वर आ आत्मा में
समुझे ना कुछु भेद यथार्थ ॥
ईश्वर के अइसन जे देखे
आत्मा के सर्वत्रे व्याप्त ।
ओकर आत्मा नष्ट ना भइल
ऊहे कइले मोक्षो प्राप्त ॥२७-२८॥

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः ।
यः पश्यति तथाऽऽत्मानमकर्त्तारं स पश्यति ।।२९।।

अथवा जे मानव समुझल कि
सभ प्रकार से सभनी काम
केवल प्रकृति करेले अर्जुन !
आत्मा का ना ए से काम ।।
ऊहे आत्मा के पहचनले
ठीक तरह से, ईहे सत्य ।
मोक्ष मिलेला उनका निश्चय
ईहे बड़ुए असली तथ्य ।।२९।।

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा ।।३०।।

स्थावर - जंगम प्राणिन्ह का जे
अलग - अलग सभ भेदन के ।
पावल ठीके टिकल प्रकृति में
एकरूप में ही तनि के ।।
आउर उनुका सतत विकास के
कारन कुदरत[२०] के जानल ।
ऊ मानव ब्रह्मत्व स्वयं में
वास्तव में अर्जुन ! पावल ।।३०।।

२०—प्रकृति

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्माऽयमव्ययः ।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते ।।३१।।

ई आत्मा निर्गुण, अनादि बा
आउर बड़ुए अविनाशी ।
स्थित शरीर में, किन्तु न वा ऊ
कर्मफल के प्रत्याशी ।।

कर्त्ता का नू काक्षा होला
कर्मफल के भोगे के ।
आत्मा स्वयं अकर्त्ता बा जब
काहे हो मन भोगे के ।।३१।।

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथाऽऽत्मा नोपलिप्यते ।।३२।।

सूक्ष्मरूप का कारन जइसे
व्याप्त व्योम ना दूषित होय ।
ओइसे व्याप्त देहि में जीवो[२१]
कबो पार्थ ! ना दूषित होय ।।३२।।

२१—आत्मा

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः ।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ।।३३।।

एक सूर्य सम्पूर्ण विश्व में
वितरित जइसे करे प्रकाश ।
ओसहीं क्षेत्री[२२] पूर्ण देहि में
करे ज्योति के पूर्ण विकास ।।३३।।

२२—जीवात्मा

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा ।
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम् ।।३४।।

ज्ञान-चक्षु विस्फारित करिके
क्षेत्र - क्षेत्रज्ञ में जे अन्तर ।
देखे पूर्णरूप से अर्जुन !
भा सोचे मन के अभ्यन्तर ।।
आउर प्रियवर ! करे प्रकृति से
मुक्ति प्राप्ति के हेतु उपाय ।
वास्तव में ऊ व्यक्ति-महात्मा,
परब्रह्म में जा मिल जाय ।।३४।।

●

चतुर्दश अध्याय

—::०::—

क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ के चलते होला सृष्टि के शुभ रचना।
क्षेत्रज्ञ क्षेत्र में रहिए के तऽ होखेला संरचना॥
एकरे चलते त्रिगुणभाव में होला वर अनुराग।
कइसे गुण बन्धन में फाँसे सुनीं एकरे राग॥

श्रीभगवानुवाच

परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम्।
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितोगताः॥१॥

सुनऽ परंतप फिन तोहरा से
कहते बानीं उत्तम ज्ञान।
जेकरा जानि के मुनि-समूह
पावल परममोक्ष-संस्थान[1]॥१॥

१—आश्रय स्थान

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च॥२॥

ओह ज्ञान के आश्रय ले के
मुनिगन पवले धाम हमार

जन्म-मरण से मिलऽ मुक्ति आ
दुःख प्राप्ति से भइल उबार ।।२।।

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम् ।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ।।३।।

महद्ब्रह्म अर्थात् प्रकृतिए
हउए पत्नी पार्थ ! हमार ।
ओह में बीज दिहीं ले हमहीं
जे से होला सृष्टि प्रसार ।।
क्षेत्र अउर क्षेत्रज्ञ ह हमरा
प्रकृति के दूइ भिन भिन रूप ।
एही दूनों का मिलान से
प्राणिमात्र के जन्म, स्वरूप ।।३।।

सर्व योनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः ।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ।।४।।

देव, पितर, मानव, पशु, पक्षी,
कीट, पतंग आदि जे योनि ।
सभ शरीर के योनि प्रकृति हऽ
हम बीज-क्षेपक पिता अयोनि ।।४।।

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः ।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ।।५।।

सतरजतम तीनों गुन अर्जुन !
पैदा प्रकृति से हो करि के ।

विभिन्न देहि में बान्हि रखेले
तनवासी अव्यय आत्मा के ।।५।।

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम् ।
सुखसंगेनबध्नाति ज्ञानसंगेन चानघ ।।६।।

एह तीन में सतगुन अर्जुन !
निर्मल ज्ञान प्रकाशक हउ ।
रोगरहित आ शान्तिस्वरूप का
भइला से सुखकारक हउ ।।
एह सतोगुन के कारन से
अहंकार हो आत्मा का ।
हम सुखी अवरू हम ज्ञानी
ई ख्याल अहंतात्मा का ।।
एही से आत्मा के बन्धन
होला पृथापुत्र ! अतिशय ।
एह से कोशिश सदा करे के
चाहीं, होय अहं के क्षय ।।६।।

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासंगसमुद्भवम् ।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसंगेन देहिनम् ।।७।।

सांसारिक विषयन से प्रीतिए
रजगुन के अर्जुन ! ह लक्षन ।
एकर दौरा भइला पर तऽ
आत्मा के गति होय विलक्षन ।।
कांक्षा, चाह पर रोक रहे ना
होला सुखदुख दू साथी ।

कार्य प्रवृत्त करा के रजगुन
२—गर्दन दे आत्मा के गल[२] - फाँसी ।।७।।

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम् ।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत ।।८।।

अज्ञान से उद्भव तमगुन के,
डाले ई देही के भ्रम में ।
आलस, नींदि, प्रमाद से राखे
आत्मा के ई बन्धन क्रम में ।।८।।

सत्त्वं सुखे सञ्जयति रजः कर्मणि भारत ।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे सञ्जयत्युत ।।९।।

सतगुन से आत्मा का सुख हो
रजगुन करे कर्म में लीन ।
तमगुन पर्दा डालि ज्ञान पऽ
कार्यविरति में करे प्रवीन ! ।।९।।

रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत ।
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा ।।१०।।

रज-तम पर जब दाब पड़े ला
होला सतगुन प्रकट सुजान !
सत-तमगुन के होते ओइसे
प्रकटे रजगुन चतुर महान !
सतरज के दबला से अर्जुन !
होय बढ़न्ती तमगुन के ।
आलस, नींद आ घेरे सबके
बढ़ती होला अवगुन के ।।१०।।

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते ।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत ।।११।।

जब प्रकाश हो ज्ञान के
सर्वेन्द्रिय में, तन में ।
तब जानऽ सतगुन के
भइल बढ़ती बा मन में ।।११।।

लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा ।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ ।।१२।।

जब हो बढ़ती लोभ के
काम करे के चाह ।
तृष्णा अउर अशान्ति जब
मारे मन में हाह[3] ।।
निश्चय समुझऽ वृद्धि तब
रजगुन के बा पार्थ !
ओह घरी जे काम हो
कबो न हो निःस्वार्थ ।।१२।।

३—कवनो वस्तु पावे के प्रबल इच्छा

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च ।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन ।।१३।।

जब ना होवे ज्ञान कुछु
विरति कार्य से होय ।
भ्रान्ति, मोह उद्भूत जब
प्रबल रजोगन सोय[4] ।।१३।।

४—वही, ऊहे

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत ।
तदोत्तमविदां लोकानमलान्प्रतिपद्यते ।।१४।।

सतगुन के प्राबल्य में,
मृत्युकाल यदि आय ।
निधन व्यक्ति तव ठीक में
दिव्यलोक में जाय ।।१४।।

रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसंगिषु जायते ।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते ।।१५।।

रजगुन जब हो प्रबलतर
मृत्यु तबे जब होय ।
कर्मासक्त के योनि में
पैदाइश हो लोय ।।
रहे तमोगुन वृद्धि पर
तवहिँ मृत्यु जब आय !
पशुपक्षिन्ह के योनि में
जन्म मनुष ध्रुव पाय ।।१५।।

कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम् ।
रजसस्तु फलं दुखमज्ञानं तमसः फलम् ।।१६।।

सतगुन युत जब कार्य हो
सुख तब प्रापत होय ।
रजगुन के फल दुःख,
अज्ञान तमो के लोय ।।१६।।

सत्त्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च ।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ।।१७।।

सत से प्रापति ज्ञान के,
रज से प्रापति लोभ ।
मोह, भ्रान्ति, अज्ञान तिहँ
तमोद्भूत विक्षोभ[५] ।।१७।।

५—विकार

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ।।१८।।

सतगुन कर्मी सत्यलोक में,
रजोगुनी जा मृत्युलोक ।
तमोगुनी कर्मी जे होला
पावेला पशुपक्षिक लोक ।।
यानी सतोगुनी पावेले
उत्तम गति तू जान पार्थ !
रजोगुनी फिन पैदा होले,
मर्त्यलोक में बात यथार्थ ।
ए से जन्म-मरन का साथे,
भोगेले दुख विबिध प्रकार ।
तमोगुनी पाताले जाले,
ए में बा न आन विचार ।।१८।।

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टाऽनुपश्यति ।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति ।।१९।।

जबन विवेकी पुरुष समुझिले
आत्मा बाटे त्रिगुन परे।
उहे शुद्ध सच्चिदानन्द के
पावेला पद-रूप खरे[६] ॥१९॥

६—दोष रहित स्पष्ट, खरा

गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान्।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥२०॥

सतरजतम तीनों देहज के
जब जीतेला तनधारी।
जन्म, मृत्यु, आ जरा व्याधि से
पावे मुक्ति निःशंक भयारी[७] ॥२०॥

७—भय + अरि = निर्भय

अर्जुन उवाच

कैर्लिङ्गैस्त्रीन्गुणानेतानतीतो भवति प्रभो।
किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन्गुणानति वर्तते ॥२१॥

उक्त वचन सुनि कृष्ण के
पूछले प्रवर सुजान।
जे जीते गुन तीन के,
ओकर का पहिचान॥?
कइसन ओकर आचरन,
आ कइसन व्यवहार।
त्रिगुण विजेता के प्रभु!
कइसन हो आचार[८]? ॥२१॥

८—रहन-सहन

श्रीभगवानुवाच

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव ।
न द्वेष्टि सम्प्रवृत्तानि न निवृत्तानिकांक्षति ।।२२।।

प्रकाश नाम सतगुन के,
रजगुन के ह प्रवृत्ति ।
तमगुन के लक्षन अहो !
मोह से अननिवृत्ति ।।
तीनों गुन के कार्य के
रहलो पर जो हौय ।
घृणा अउर ना चाह तो
ऊ आचार कहोय ।।
त्रिगुन विजेता के इहे
हउए सद्व्यवहार ।
भा लक्षन आचार[11] के
जानऽ पृथाकुमार ।।
अइसत जन होले सदा
उदासीन, निष्पाप ।
शुद्ध हृदय के, शान्त चित
आ पवित्र जस आप[12] ।।

११—रहन-सहन

१२—जस

उदासीनवदासीनो गुणैर्योनविचाल्यते ।
गुणावर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेंगते ।।२३।।
समदुःखः सुखः स्वस्थः समलोष्टश्मकाञ्चनः ।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ।।२४।।

मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥२५॥

सतत रहे जे उदासीन आ
त्रिगुन कर्म से चले न चित्त ।
जे अइसन समुझे कि तीन गुन
निजी काम में स्वयं प्रवृत्त ॥२३॥
जे सुखदुख के समुझे सम आ
रहे चित्त विकार से दूर ।
जेकरा कंकड़, पत्थर, सोना
एक समान दीखे कुरुवीर !
जे प्रिय भा अप्रिय वस्तु के
देखे हरदम एके नैन ।
जे बा धीर-गभीर-शान्त आ
सम जाने निन्दा-स्तुति बैन ॥२४॥
जेकरा मान-अपमान अउर
शत्रु-मित्र में नइखे भेद ।
जे कबहीं कुछ काम करेना
गुणातीत ऊ व्यक्ति अभेद[13] ॥२५॥

१३—प्रत्यक्ष बिना भेद के

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।
स गुणान्समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥२६॥

एक निष्ट हो करि जे मानव
हमरा के सेवेला पार्थ !
तीनोंगुन के अवमनलो पर
ब्रह्मभाव ऊ पाय यथार्थ ॥२६॥

ब्रह्मो हि प्रतिष्ठाऽहममृतस्याव्ययस्य च ।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च ।।२७।।

कथित ब्रह्म अमृत, अव्यय आ
शाश्वत धर्म, एकान्तिक सुख ।
ई सभ नाम हमरे ह अर्जुन ।
जे भजीऽ से पाई न दुःख ।।
अथवा जे अखण्ड भक्ति से
अर्जुन ! पूजन करी हमार ।
ऊ त्रिगुनन के जीती निश्चय,
पाई सद्गति, मोक्ष अपार[१४] ।।२७।।

१४—अनन्त

पंचदश अध्याय

बिन उपजे वैराग के, ज्ञान, भक्ति ना होय।
एह से बिन पूछे प्रभु, कहले बात सँयोय॥
जइसे रुख निर्माण बा, भइल भूमि में पार्थ!।
ओइसे त संसृति के, अर्जुन सृष्टि यथार्थ॥

—::०::—

श्रीभगवानुवाच

ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्॥१॥

१—पीपलवृक्ष

अश्वत्थवृक्ष[1] संसारवृक्ष ह,
ओ पर बाटे ब्रह्म अधिकार।
उनकर एकरा पर शासन बा
रक्षणादि के सभ व्यापार॥

२—उत्तम, पवित्र

अविनाशी अश्वत्थवृक्ष ह
ब्रह्मलोक के वृक्ष अखोर[2]
लेकिन एकर जड़ ऊपर बा
शाखा सब नीचे का ओर॥

चारो वेद एकर ह पत्ता,
जे जाने हउए वेदज्ञ।
एहवृक्ष के ज्ञाता जे बा
ऊहे वास्तव में सर्वज्ञ ।।१।।

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखाः
गुणप्रवृद्धा विषयप्रबालाः।
अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि
कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके ।।२।।

३—सतरजतम

[3]गुन-सिंचित तरु के शाखा सभ
नीचे ऊपर फइलल जमके।
सभ इन्द्रिय विषये एकर बा
लहलहात कोंपल जे चमके।।
कर्मन्हि के फल के समान बा

४—ममता अउर वासना

मनुष्य लोक में जड़[4] एकर।
चहूं ओर जे पसरल बाटे
जानऽ तू ए सभ के प्रियवर ! ।।२।।

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते
नान्तो न चादिर्न च सम्प्रतिष्ठा।
अश्वत्थमेनं सुविरूढ़मूल—
मसंगशस्त्रेण दृढ़ेन छित्त्वा ।।३।।

ततः पदं तत्परिमार्गतव्यं
यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः।

तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये
यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ।।४।।

५—अश्वत्थवृक्ष

कथित रूप तरु[५] के जइसन वा
इहाँ दृष्टि में आइल ना।
आदि, अन्त अस्तित्वादि के
पतो तऽ केहू पा इल ना ।।
एह सुदृढ़ जड़युक्त वृक्ष के
विरक्ति खंग से खंडित कर
खोज करे औह प्रभु के चाहीं
जहाँ से लौटे के ना घर ।।
फेनु शरन में जाये चाहीं
ओही आदि पुरुष के पास।
जेकरा से पुरातन जगके
पार्थ ! भइल वा पूर्ण विकास ।।४।।

निर्मानमोहा जितसंगदोषाः
अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञै—
र्गच्छन्त्यमूढ़ाः पदमव्ययं तत् ।।५।।

आदिपुरुष के प्राप्त करे ऊ
जेकरा ना वा कुछओ ख्याल।
का मान आ, का अपमान ह,
आउर का माया के जाल ।।
जेकर ध्यान वा आत्मज्ञान में
अउर वासना से बा दूर।

जो बा सुख, दुख, सर्दीगर्मी आ
हानिलाभ से बहुत सुदूर ।।५।।

न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं ममः ।।६।।

हमरा परम धाम में अर्जुन !
सूर्य-चन्द्र ना करसु प्रकाश ।
अउरू ना आगिन के पहुँचे
गर्मी-ज्योति कबहुँओ पास ।।
ठीक पहुँचि के उहाँ परन्तप !
केहू लवटि न पावेला ।
हमरा शरन में जा के, फिन त
भक्त इहाँ ना आवेला ।।६।।

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।
मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ।।७।।

जे बा एह जगती में
पार्थ ! सनातन जीव !
अखंड अंश हमार ऊ,
हो प्रकृतिस्थ अतीव ।।
ज्ञानेन्द्रियन आ मन के
खींचे अपना ओर ।
ऐहिक भोगविलास हित
रखे कामना घोर ।!
हर शरीर में स्वयं ऊ
कर्त्ता; भोक्ता आप ।

रविसम जल में दर्श दे,
जल के हटे, न छाप ।।
हो उपाधि से रहित फिन
सत्यरूप में जाय ।
जस प्रकाश का हटते त
छाया जा विलगाय ।।७।।

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः ।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धनिवाशयात् ।।८।।

सब के मालिक धर शरीर जब
छोड़ेले सभ जीर्ण शरीर ।
ओकरा मन-इन्द्रिय के संग ले
जाले दूसर में अकसीर[६] ।।
जइसे गन्ध पुष्प के ले के
हवा पहुँचि जाले अन्यत्र ।
ठीक उहे व्यापार जीव[७] के
प्रायः नित दिन वा सर्वत्र ।।८।।

६—अपना गुण के प्रभाव डाले वाला, ईश्वर

७—जीवात्मा

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च ।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते ।।९।।

कान, चक्षु, चमड़ा[८] रसना अ।
नाक अउर मन से ले काम ।
विषयभोग भोगे जीवात्मा
जब चाहे जइसन आराम ।।९।।

८—जीभ

उत्क्रामन्तं स्थितंवापि भुञ्जानां वा गुणान्वितम् ।
विमूढ़ा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ।।१०।।

नन्धारी तनत्यागी आउर
शरीरस्थित जीवआत्मा के।
विषयव सना में रत आउर
सतरजतम युत आत्मा के॥
नाहीं देखि सके अज्ञानी
यद्यपि आत्मा सदा समक्ष।
बाकिर ज्ञानयुक्त का दर्शन
होत रहेला सभ प्रत्यक्ष॥१०॥

यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम्।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः॥११॥

योगगुक्त होके जें चाहे
देखि सकेला आत्मा के।
अपना अन्तःकरण में निश्चय
सदा शुद्ध जीवात्मा के॥
लेकिन जेकर चित पविता से
बड़ुए बहुते बहुते दूर।
जेकर इन्द्रिय वश में नइखे,
चित कुकर्मरत बा भरपूर॥
उनुका चेष्टा कइलो पर ना
दर्शन हो जीवात्मा के।
सदा असंभव बात परंतप!
प्राप्ति कठिन परमात्मा के॥११॥

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धिमामकम्॥१२॥

८—अग्नि

जवन तेज तू पावत बाड़ऽ
सूर्य, चन्द्र आ वैश्वानर[८] में ।
ऊ सभ तेज हमार ह अर्जुन !
निश्चय जानऽ एह अवसर[९] में ॥१२॥

९—प्रसंग

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा ।
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मक ॥१३॥

पृथवी का भीतर में जाके
अपना बल से हे अर्जुन !
प्राणिमात्र के धारन कइले
पार्थ ! रहीं ले हम सभ जून ॥
रसयुक्त चन्द्र रूप में
पोषण हम सभ औषधि के ।
सदा करीले गेंहू, धान, जव
बजरा आदि वनस्पति के ॥१३॥

अहं वैश्वानरो भूत्वा देहमाश्रितः ।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥१४॥

प्राणिमात्र का तन में घुसि के
प्राण आपन वायु के संग ।
हम जठराग्नि अन्न पचाईं
लेह्य, चोष्य, भक्ष्य, भोज्यांग ॥१४॥

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो
मतः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो
वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ॥१५॥

प्राणिमात्र का उर में हमहीं,
हमरे बल सभ कुछ हो याद ।
रूपादिक के ज्ञान हमरे से
स्मृति-विस्मृति हम से आबाद ।।
हमरे के जाने सभ वेद,
हमहीं वेदान्त के कर्त्ता ।
हमहीं वेद के जाने वाला
हमहीं सभके कर्त्ताधर्त्ता ।।१५।।

द्वाविमौ पुरुषे लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।
क्षरः सर्वाणिभूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ।।१६।।

दुइ तरह के लोग जगत में
नाशवान, अविनाशी ।
नाशवान तनधारी बाड़े,
विकाररहित अविनाशी ।।१६।।

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
यो लोकत्रयमाविश्य विभर्त्यव्यय ईश्वरः ।।१७।।

इनका परे जे उत्तम बाड़े
पुरुष कहाले परमात्मा ।
ऊ अविनाशी ईश्वर खुद में
त्रिलोकपाल, उत्तमात्मा ।।१७।।

यस्मात्क्षरमतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ।।१८।।

क्षर, अक्षर, दूनों से उत्तम
भइला के कारन से हम ।

जग में आ वेदन्ह में अर्जुन !
सदा कहइलीं पुरुषोत्तम ।।१८।।

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम् ।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत ।।१९।।

एह रूप में जे हमरा के,
नित्य, शुद्ध, अविनाशी जाने !
ऊ सर्वज्ञ, विद्वान परंतप !
सर्वभाव से हमके माने ।।१९।।

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयाऽनघ ।
एतद्बुध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत ।।२०।।

पापरहित अर्जुन ! तोहरा से
बिलकुल गुप्त हम कहलीं बात :
एकरा जनले मानव होला
कृतकृत्य, बुद्धिमान, अभिजात ।।२०।।

★

षोडश जध्याय

ब्रह्मवाद - देहात्मवाद के, चर्चो तऽ अब जानीं ।
दैवी सम्पत्ति के छोड़ि के, आन के दूषित मानीं ।।
राक्षसी - आसुरी दूनों ई, सम्पति बाटे हेय ।
मर्यादापालन शास्त्र के, केवल समझीं गेय ।।
संसार वन्धन से छूट के, राह बतावे दैवी ।
एकरा उलटा, तऽ शेष दू राह चलावे ऐबी ।।

—::०::—

श्रीभगवानुवाच

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ।।१।।
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दयाभूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ।।२।।
तेजः क्षमाधृतिशौचमद्रोहो नातिमानिता ।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत ।।३।।

निर्भयता, चित-मन के पविता,
ज्ञानयोग में निष्ठा ।

दान दिहल आ इन्द्रिय निग्रह
त्रितप[1] यज्ञ के चेष्टा ।।
वेदपाठ, आउर सीधापन,
शान्ति, अहिंसा, त्याग ।
साच बोलल आ क्रोध न कइल
लुतरीपन[2] परित्याग ।।
हर प्राणी प दया, कोमलता,
लज्जा, लोभ से रिक्ति ।
चांचल्यहीनता, वैरत्याग,
अहंपना से मुक्ति ।।
तेज, क्षमा, धैर्यपन, पवित्ता,—
इहे दैवी सम्पति ।
जेकरा में इ गुन सब होई
ऊ सर्वसुन्दर मति । १-३।।

१—कायिक वाचिक मानसिकतप

२—चुगलखोरी

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च ।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ संपदामासुरीम् ।।४।।

दम्भ, दर्प, अभिमान, क्रोध, आ
निष्ठुरता आउर अज्ञान ।
ई प्रकृति ह ओह लोगन के
जे आसुरीसम्पदावान ।।४।।

दैवी संपद्विमोक्षाय निबन्धायासुरीमता ।
मा शुचः सम्पदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव ।।५।।

जेकर होले दैवी प्रकृति
उहे मोक्ष के अधिकारी ।

आसुरी प्रकृति अनुरागिन के
बन्धन में फँसना भारी ।।
तू कुछु सोच करऽमत अर्जुन !
दैवी प्रकृतियुत जन्म तहार ।
तत्वज्ञान के तू अधिकारी
मोक्ष तहार होई साकार ।।५।।

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च ।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु ।।६।।

एह लोक में दूइ तरह के
जीव - सृष्टि वा पाण्डववीर !
दैवी के चर्चा सुनि लेलऽ
सुनऽ आसुरी के बलधीर ! ।।६।।

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः ।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते ।।७।।

सदाचारिता, सत्यवादिता,
पवितादि से हीन सुजान !
आसुरी प्रकृति युक्त व्यक्ति के
कर्म-अकर्म के नइखे ज्ञान ।।७।।

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम् ।
अपरस्परसंभूतं किमन्यत्कामहैतुकम् ।।८।।

उनुका मत से जग असत्य बा,
निराधार वा, अउर अनीश्वर ।

३—बनावटी बात

ब्रह्मो आदि कपोलकल्पना[3],
केहू नइखे तऽ जगदीश्वर ।।
स्त्रीपुरुष संयोग के कारन
रचना बा एह संसृति के ।
एकरा छोड़ि आन कारन त
नइखे पार्थ ! एह सृष्टि के ।।८।।

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः ।
प्रभवंत्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः ।।९।।

कथित विन्दु के आश्रय ले के
मूढ़, भयंकरकर्मी, खल ।
जगबैरी, पातक, नष्टात्मा
ले ले जन्म, बात निश्छल ।।९।।

कामनाश्रित्य दुष्पूरं दंभमानमदान्विताः ।
मोहाद्गृहीत्वाऽसद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः ।।१०।।

मद मातल छल, कपट, दंभ युत
असुर प्रकृति के अनुयायी ।
निष्फल इच्छा के आश्रय ले
करसु काम अशुभ बारि आई ।।१०।।

चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः ।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ।।११।।

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः ।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसंचयान् ।।१२।।

मृत्युतलक चिन्ता में डूबल
विषयभोग समझसु पुरुषार्थ ।
एकरा खातिर सब कुकर्म ऊ
करिके साधसु आपन स्वार्थ ।।११।।
काम, क्रोध का बश में हो के
धनसंचय खातिर घटिहाई ।
आशारूपी फँसरी में फँसि
करसु निरन्तर दुखदाई ।।१२।।

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्यसे मनोरथम् ।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ।।१३।।
असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि ।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी ।।१४।।

सोचसु, आजु हमरा ई मिलल,
बादो सभ धन हमरे होई ।
सभ कुछु हमार ह; होके रही,
ई अभिलाषा पूरा होई ।।१३।।
ओह दुश्मन के हत्या कइलीं,
आ अउरन्ह के करबि जरूर ।
हम मालिक, भोगी, बलवान आ
सुखी, सिद्ध, कृतकृत्य, गरूर ।।१४।।

आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योस्ति सदृशो मया ।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिता ।।१५।।
अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः ।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ।।१६।।

हय अमीर, अभिजात, अतुल्य हम
हम यज्ञकार, हम दाता ।
हर्षानन्द उदधि के भोगी,
हम आपन आतम विधाता ।।१५।।
अज्ञानविमोहित ऐहे तरह से
भ्रमित चित्त हो, मोह में पड़ि ।
विषयभोग में लिप्त अहर्निश
सीधे जाले नरक में गड़ि ।।१६।।

आत्मसंभाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः ।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम् ।।१७।।
अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः ।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ।।१८।।

अपने आपन स्वयं प्रशंसक,
धन-सम्मान का मद में चूर ।
अहंकारिता के आश्रय ले,
अनियमित यज्ञलिप्त भरपूर ।।
काम, क्रोध, बल दर्पाधीन रहि
समय बितावसु ऊ मतिमन्द ।।
निज आउर पर के तनवासी—
हमसे घृणा करसु स्वच्छन्द ।।१७-१८।।

तानहं द्विषतःक्रूरान्संसारेषु नराधमान् ।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ।।१९।।
आसुरीं योनिमापन्ना मूढ़ा जन्मनि जन्मनि ।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यांत्यधमां गतिम् ।।२०।।

अहमन द्वेषी, क्रूर, निर्दयी,
नीच प्रकृति के लोगन्ह के ।
बारंबार हम असुरयोनि में
डालीं ले कुभोगभोगन्ह के ॥१९॥
असुर योनि में रहला कारन
मूढ़ न आवसु हमरा पास ।
अइर अधमगति के ऊ पावसु
कारन शुभ में ना विश्वास ॥२०॥

४—अच्छा कर्म

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥२१॥
एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमो द्वारैस्त्रिभिर्नरः ।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम् ॥२२॥

काम, क्रोध आ लोभ, नरक के
तीन द्वार के जानऽ पार्थ !
आत्मा के नाशक तीनो के
त्यागल चाहीं जगहितार्थ ॥२१॥
जे व्यक्ति एह तीनि द्वार के
त्याग करेला हे कौन्तेय !
भला करेला निज आत्मा के
पावेला गति ऊ सुखदेय ॥२२॥

या शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः ।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परांगतिम् ॥२३॥
तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ॥२४॥

शास्त्ररीति - विधि त्यागि के,
जे करेऽ मनमानी ।
सौख्य, सिद्धि भा मोक्ष ऊ
ना पावे अज्ञानी ॥२३॥
का करणीय भा अकरणीय बा,
दूनों खातिर शास्त्र प्रमाणऽ ।
एहसे विधिवत् शास्त्र अनुसार
कर्तव कइल उचित सुजान ! ॥२४॥

●

सप्तदश अध्याय

के हऽ असुर, के देव हऽ का दूनों के धर्म ।
तीनि प्रकार के श्रद्धा आउर ओकर मर्म ।।
ओसहीं तीनि आहार, आउर यज्ञ, तप, दान ।
के वर्णन तू जानि लऽ, होई जग कल्यान ।।
संभव कतहीं दोष कुल आवे नजर सुजान !
"ओंतत्सत्" के नाम ले, काटे समय महान !
अँइसे कइला से अवशि, कार्य पूर्ण हो जाय ।
अनुभव होखे सत्य के अउर मोक्ष मिल जाय ।।

—::०::—

अर्जुन उवाच

ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयाऽन्विताः ।
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः ।।१।।

सभ शास्त्ररीति, विधि त्यागि के
जे श्रद्धा से यज्ञ करे ।
ओकर निष्ठा कवन कहाई
कहीं कृष्ण जी, चित्त भरे ।।१।।

श्रीभगवानुवाच

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा ।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसि चेति तां शृणु ॥२॥
सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत ।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥३॥

बात सूनि के पृथापुत्र के
कहले कृष्णजी, सुनऽ महान !
हर तनधारी के सुभाव से
श्रद्धा तीनि प्रकार सुजान !
सात्त्विकी, राजसी, तामसी;—
इहे तीनि बा श्रद्धाभाव ।
हर व्यक्ति के निज सुभाव के
सदृश होला प्रति[1] गुन - भाव ॥२॥
जेकरा में बा सत्त्व प्रधान,
उनुकर श्रद्धा सात्विकी ।
ओसहीं शेष दूइ के जानऽ
गुणानुरूप वर तात्विकी ॥३॥

१—प्रतिगुण

यजन्ते सात्त्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसाः ।
प्रेतान्भूतगणाश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः ॥४॥

सतोगुनी जे व्यक्ति बा,
पूजे केवल देव ।
सदा शुद्ध हो भावना,
ओकर जो बिन भेव ॥

रजोगुनी असुर - यक्ष के
अर्चें गुन अनुसार ।।
तमोगुनी जन प्रेत के,
अपना गुन अनुसार ।।
जे जेकर पूजा करे,
उ ओइसन हो जाय ।
जग लेउ अब खुदे समुझि,
का बाटे सदुपाय ।।४।।

अशास्त्रविहितंघोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः ।
दम्भाहंकारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः ।।५।।
कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममेचतसः ।
मां चैवान्तः शरीरस्थं तान्विद्धासुरनिश्चयान् ।।६।।

जे बा कपटी, हंकारी आ
विषयानुराग बलधारी ।
शास्त्रविरुद्ध तप करिके ऊ त
पंचभूत के संघारी ।।
प्राणिमात्र के तन में वासो
परमात्मा के करी अशक्त ।।
ओह व्यक्ति के निश्चय समुझऽ
वृत्ति आसुरी में आशक्त ।।५-६।।

आहारस्त्वपि सर्वस्व त्रिविधो भवति प्रियः ।
यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु ।।७।। ।

जइसन भेद श्रद्धा के बाटे
भोजनके बा तीनि प्रकार ।

तप, दान, उपासना ओसहीं
तीनि तरह के पृथा कुमार ! ।।७।।

आयुः सत्त्वबलारोग्य सुखप्रीतिविवर्धनाः ।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः।।८।।

उम्र, सत्त्व, बल, स्वस्थता
अउर विवर्धक प्रीति ।
रसमय, चिकना, सारयुत,
हितकर भोज्य सप्रीति ।।
पावसु सात्त्विक लोग सभ
अउर न आन प्रकार ।
ज्ञान, बुद्धिओ सात्त्विकी
पावसु ऊ अनुसार ।।८।।

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ।।९।।

कड़ुवा, खट्टा, लवणयुत,
उष्ण, तिक्त, अति रूक्ष
भोजन हउए राजसी
दुःखजनक प्रत्यक्ष ।।९।।

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत् ।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ।।१०।।

ठंढा, नीरस, अउरू महकत,
बासी, जूठा, अपवित्र,

तमोगुनी के भोजन रुचिकर ।
ह ईहे तू जानऽ मित्र ! ।।१०।।

अफलाकांक्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते ।
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः ।।११।।

फल से आशा त्यागि के
यज्ञ कइल कर्त्तव्य ।
अइसन जानि, विधिसे करे
सात्विक यज्ञ ऊ भव्य ।।११।।

अभिसन्धाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत् ।
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम् ।।१२।।

फल के आशा राखि के,
भा ऐश्वर्य दिखाउ ।
हो अनुष्ठान यज्ञ के,
राजस उहे कहाउ ।।१२।।

विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम् ।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ।।१३।।

विधिविरुद्ध जे यज्ञ हो,
खान - पान ना होय ।
वैदिक मंत्र न उच्चरै
श्रद्धारहित जे होय ।।
दान, दक्षिणा के जहाँ
कुछु प्रबन्ध ना होय ।

तमोगुनी के नाम से
यज्ञ पुकारे लोय ।।१३।।

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ।।१४।।

२—ब्राह्मण

देव, द्विज,[२] गुरु, प्रज्ञ के,
पूजन करे जे व्यक्ति ।
बाहर - भीतर शुद्ध रहि,
रहे विनम्र सभक्ति ।।
ब्रह्मचर्य पालन करे,
दे ना काहु के कष्ट ।
तप शारीरिक ह उहे,
कौन्तेय सुनऽ तू स्पष्ट ।।१४।।

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ।।१५।।

हो वाणी आनन्दकर,
प्रिय, सत्य हितकारी ।
जो वैदिक अभ्यास हो,
तप वाचिक प्रियकारी ।।१५।।

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।
भाव संशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ।।१६।।

जेकर मन हर्षित रहे,
चित्त शान्त, छलहीन ।

मौन रहे, मन करि वशी,
मानसतपी प्रवीन ।।१६।।

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः ।
अफलाकांक्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते ।।१७।।

फलाभिलाषा त्यागि के,
श्रद्धान्वित जे व्यक्ति ।
स्थिरचित हो के तप करे,
सप्रेम अउर सभक्ति ।
तप सात्विक कहलाय ऊ,
अइसन जाने लोक ।
प्रचलित बाटे तथ्य ई,
इहलोक, परलोक ।।१७।।

सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत् ।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम् ।।१८।।

जे तप निज सत्कारहित,
भान तथा पूजार्थ ।
अथवा हो पाखंड से
भा साधन को स्वार्थ ।।
हो कृत मानव से अहो !
पार्थ - धनञ्जय - वीर ।
क्षणिक अनिश्चित तप उहे,
राजसी कहऽ सुधीर ।।१८।।

मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः ।
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम् ।।१९।।

लेकिन जे तप मूढ़गन,
स्वात्मा के दूख देइ,
पर के दुःख विनाश हित,
करमु त तामस सेइ ।।१९।।

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ।।२०।।

करतव जानि के दान कइल जा
योग्यकाल, थल, पात्र विचार ।
ओह् व्यक्ति के दान न देवे
जेसे होवे कुछु उपकार ।।
संक्रान्ति अउर जे पर्वकदिन
तीर्थस्थान पर होवे दान ।
औही दान के ह महानता,
दान सात्विकी उहे महान ।।२०।।

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिस्य वा पुनः ।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसस्मृतम् ।।२१।।

उपकार चाहि जे दान हो
भा होवे त्रिन मन के ।
रासी दान कहलाय ऊ
जो न देय हो तन[३] के

३—मनलगा के

अदेश काले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ।।२२।।

वर्जित थल आ समय पर
जो अयोग्य के पाय ।
भा योग्य के हेय समुझि
दिहल दान जे जाय ।।
ऊहे दान हऽ तामसी
कहत सभे मुनिराय ।
अइसन दान कइल अहो !
अनुचित दान कहाय ।।२२।।

ओं तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ।
ब्राह्मणस्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ।।२३।।

'ॐ तत्सत्' ई तीनि गो
नामे ब्रह्म कहात ।
एही तीनि से पूर्व में
ब्राह्मण, वेद, यग्य[४] जात[५] ।।
अधिकारी जो दान आ
यग्य के पहिले, बाद ।
तीनि बार उच्चरित करे
'ॐ तत्सत्' के नाद ।
निश्चित तब यग्य, दान में
दोष खड़ा ना होय ।।
अङ्गहीन जो हो किया,
सात्त्विकता ना खोय ।।२३।।

४—यज्ञ
५—उत्पन्न

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपः क्रियाः ।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ता सततं ब्रह्मवादिना ।।२४।।

एही कारणें ज्ञास्त्रविहित
यज्ञदान आ तप के पूर्व।
वेदज्ञाता कहे निरन्तर
ओंमाक्षर जे अति अपूर्व ॥२४॥

तदित्यनभिसन्धाय फलं यज्ञतपः क्रियाः।
दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकांक्षिभिः ॥२५॥

मोक्षार्थी जे व्यक्ति बा,
फल के आशा छोड़ि।
पहिले यग, तप, दान के
"तत्" उचरे कर जोड़ि ॥२५॥

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते ॥२६॥

साधुभाव, सद्भाव में
"सत्" के होय प्रयोग।
सबहीं माँगलिक कार्य में,
सत् के रहे सँयोग[६] ॥२६॥

६—व्यवहार

यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते ॥२७॥

यज्ञ अउर तप, दान कर्म में
'सत्' शब्द सम्बोधित होय।
ईश्वर खातिर कइल काम में
'सत्' पहिले उच्चारित होय ॥२७॥

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ।।२८।।

बिना भक्ति आ लगन के
कथित कर्म जो होय।
'सत्' उचरल ना युक्त बा
माने ई सब लोय ।।२८।।

★

अष्टादश अध्याय

त्याग अउर संन्यास के भेद सुनींऽ चित लाय ।
कर्म, ज्ञान, धृति बुद्धि, के आदिक ज्ञान सुखाय ।।
सुख, सुसिद्धि आ मोक्ष के मार्ग सकल समवेत ।
एह अध्याय में कइल बा करींऽ सयत्न उपेत ।।

—::०::—

अर्जुन उवाच

संन्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम् ।
त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन ।।१।।

बात सूनि के हृषीकेश के
कहले झट से पृथा कुमार ।
महाबाहु प्रभु ! केशिनिषूदन !
त्रिभुवन के हे एकाधार !
'त्याग अउर संन्यास' शब्द में
का अन्तर बा कहीं बुझाय ।
तात्विक ज्ञान दूनों के प्रभुजी !
अलग अलग झट दीं समुझाय ।।१।।

श्रीभगवानुवाच

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः ।
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः ।।२।।

सन्यास अउर त्याग के अर्जुन !
प्रायः अभिप्राय बा एक ।
काम्यकर्म के तजि देला के—
सन्यास कहसु पंडित प्रत्येक ।।
काम्यकर्मफल के तजला के
त्याग कहींले हे कौन्तेय !
विचार कुशल के ई सम्मति त
अक्षर-अक्षर बा अनुज्ञेय ।।२।।

त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः ।
यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यमिति चापरे ।।३।।

कहसु तत्व के ज्ञानी कतना
राग द्वेष अइसन परित्याग ।
काम्य कर्म के चाहीं अर्जुन !
चाहीं ना ओह से अनुराग ।।
किन्तु, कहसु कुछ लोग विवेकी,
यज्ञ, दान, तप के ना त्याग ।
कइल चाहीं कबहीं भूलि के !
कुशल कहाँ कइले वैराग ? ।।३।।

निश्चयं श्रृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम ।
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः सम्प्रकीर्तितः ।।४।।

हे भारत कुलश्रेष्ठ पुरुष तू
अब सम्मति, निश्चय सुनऽ हमार।
खूब सोचविचार कइले पर
निकलल त्याग के तीनि प्रकार ।।४।।

यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।
यज्ञोदानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ।।५।।

यज्ञ, दान, तप, तीनि कर्म के
कइल न चाहीं कबहीं त्याग ।
ज्ञानी के चित शुद्ध करे ई,
तब काहे इनकर परित्याग ? ।।५।।

एतान्यपि तु कर्माणि संगं त्यक्त्वा फलानिच ।
कर्त्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम् ।।६।।

यज्ञ, दान, तप कइला के ना
होखल चाहीं कुछ अभिमान ।
फल-आश, आसक्ति त्यागि के
अगर करी केहू अनुष्ठान ।।
कर्मबन्ध में फँसी न कबहीं,
मोक्ष प्राप्ति तब होई जरूर ।
इतर भाव अइला पर निश्चय
आ घेरी उनुका मगरूर ।।६।।

नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते ।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः ।।७।।

१—नियमित

नित्य[1] कर्म के त्याग अवश्ये
होई कइल महा अनुचित ।
मूर्खपना से त्याग कहाई
त्याग तामसी ई समुचित ।
नित्यकर्म कइला से निश्चय
अज्ञानी के मन हो शुद्ध ।
मन शुद्ध भइले पर अर्जुन !
मुक्ति मार्ग दीखी परिशुद्ध ॥७॥

दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत् ।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत ॥८॥

जो केहू शारीरिक दुख के
भय से त्यागे कर्म, दुखद
एकर फल ना मिली कुछओ,
ई राजसी त्याग बेहद ॥८॥

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन ।
संगं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः ॥९॥

नित्य कर्म करना अवश्य बा,
अइसन समुझि करी जे कर्म ।
फल आसक्ति के चाह करी ना
तबे त्याग के सात्त्विक धर्म ॥९॥

न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते ।
त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशय ॥१०॥

अकुशल कर्म से द्वेष न होवे,
न कुशल कर्म में हो आसक्ति ।

२—निस्सन्देह
३—प्रवृत्ति का

सत्त्वगुणी, ज्ञानी, त्यागी ऊ
संदेहरहित,[२] आस्तिक संसक्ति[३] ।।१०।।

न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः ।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते ।।११।।

तनधारी खातिर संभव कव
कर्मत्याग करि दे एकदम ।
कर्मफलाशा जेकेरा नंइखे
निश्चय बा त्यागी हरदम ।।११।।

अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणा फलम् ।
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित् ।।१२।।

तीनि तरह के होला कर्मफल
पार्थ ! अनिष्ट, इष्ट आ मिश्र ।
सहित फलेच्छा काम करे जे
४—लगातार भोगे फल मरणान्त अजस्र[४] ।।
किन्तु, सतत जे ज्ञाननिष्ठ वा
भा परमहंस, परिव्राजक ।
ऊ तीनों फल भोग करे से
वंचित रहे सदा मृत्यु तक ।
पापकर्म के फल अनिष्ट ह,
पुण्यकर्म के फल ह इष्ट ।
पापपुण्यफल 'मिश्र' कहाला,
एह तीनि में मध्य वरिष्ट ।।
पापी जन्मे नरकयोनि में
ध्रुव पावे पुण्यात्मा स्वर्ग ।

अन्तिम जन्मे मनुष योनि में
५—स्वर्ग हो न प्राप्त कवहीं अपवर्ग[५] ।।१२।।

पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे ।
सांख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम् ।।१३।।
अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् ।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्रपंचमम् ।।१४।।

सांख्य शास्त्र में वर्णित वा जे
कर्मसिद्धि के कारन पांच ।
उनुका के तू सुनि ल अर्जुन !
हमरा से अब विलकुल साच ।।
अधिष्ठान भा कहऽ शरीरे
कर्त्ता भा सोपाधि चैतन्य ।
कारण अर्थात् पंचेन्द्रिय आ मन,
चेष्टा या कि पाँचवायु धन्य ।।
पंचम कारन दैव अर्थात्
६—देवता सूर्यादि देवता भा सुमन[६] ।
जिनका वलवे से इन्द्रियगन
करसु कार्य आपन सम्पन्न ।।१३-१४।।

शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः ।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पंचैते तस्य हेतवः ।।१५।।
तत्रैव सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः ।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः ।।१६।।

तन, मन, वाणी से जे केहू
करे कर्म सद् भा कि असद् ।
सब के कारन कथित पाँच ई
बड़ुए अर्जुन ! ठीक विशद ।।
अतनो पर जे बा अज्ञानी
समझेला स्वात्मा के कर्त्ता ।
असल राह से भूलल जनिहऽ
अपना सुख के स्वयं ऊ हर्त्ता ।।१५-१६।।

यस्य नाहं कृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते ।।१७।।

जेकरा में कुछ अहं न बड़ुए
कि ऊ कर्ता स्वयं ह अपने ।
नइखे जेकर बुद्धि कर्म में
लिप्त कबहुओ जानऽ सपने ।।
जो मारे ऊ इन प्राणिन के
तबहुँ हन्ता होई ना ।
एह कर्म के ओकरा पर त
असर कबहुँओ होई ना ।।१७।।

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधः कर्मचोदना ।
करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः ।।१८।।

ज्ञान, ज्ञेय आउर परिज्ञाता,
ईहे तीनि ह कर्मप्रवर्तक[७] ।
ईहे तीनि ह कार्यारम्भ के
मूलमंत्र बड़ पार्थ ! समर्थक ।।

७—संचालक

एह तीनों का ना मिलला बिन
कवनो कार्य ना हो आरम्भ ।
भा कवनो का ना रहला बिन
होवे कर्म के ना प्रारम्भ ।।
करण, कर्म आ कर्ता तीनों
कर्माश्रय के मूल समर्थक ।
जो तीनों के साथ रही ना
होई कवनो कार्य न सार्थक ।।१८।।

ज्ञानं कर्म च कर्ता च त्रिधैव गुणभेदतः ।
प्रोच्यते गुणसंख्याने यथावच्छृणु तान्यपि ।।१९।।

सांख्य अनुसार सतरजतम के
गुणेभेद से हे कौन्तेय !
ज्ञान, कर्म आ कर्ता समुझऽ
तीनि तरह के बाड़े ज्ञेय ।।१९।।

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते ।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् ।।२०।।

जवना ज्ञान से मानव अर्जुन !
भिन्न भिन्न के जीवन्हि में ।
८—परमेश्वर देखेला अभिन्न अव्यय[८] के
ऊ जानऽ सात्त्विक चिन्तन में ।।२०।।

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान्पृथग्विधान् ।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम् ।।२१।।

जवन ज्ञान से हर तन में स्थित
आत्मा के माने मानव आन[९] ।
ओह ज्ञान के राजस संज्ञा
दिहल उचित बा मित्र सुजान ! ।।२१।।

९—अन्य, पृथक

यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन् कार्ये सक्तमहैतुकम् ।
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम् ।।२१।।

जवना से नश्वर शरीर के
जाने केहू आत्मा, परमेश ।
ऊ ज्ञान निन्दित, निर्मूल हऽ
तामस ज्ञान कहावे शेष ।।२२।।

नियतं संगरहितमरागद्वेषतः कृतम् ।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते ।।२३।।

नित्यकर्म जे नियम से होवे,
जेह कर्म में मनुष न लीन ।
जवना के सम्पादन होवे
राग-द्वेष के ना आधीन ।।
आउर कर्मफल के इच्छा के
त्यागि जवन हो अर्जुन ! कर्म ।
ओह कर्म खे निश्चय जानऽ
सात्विकता संपूरित धर्म ।।२३।।

यत्तु कामेप्सुना कर्म साहंकारेण वा पुनः ।
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम् ।।२४।।

जवन कर्मफल के इच्छा से
अहंकार से, अति दुख से ।
हो सम्पादित, राजस हउए
कहे विवुध सभ निर्मल बुध से ।।२४।।

अनुबन्धं क्षयं हिंसामनपेक्ष्य च पौरुषम् ।
मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते ।।२५।।

जवन कर्म परिणाम, घटी आ
हिंसा, समरथ के सोचे विन ।
हो आरंभ मूढवश हो के
तामसकर्म कहाइल सभ दिन ।।२५।।

मुक्तसंगोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः ।
सिद्धसिद्धयोर्निर्विकारः कर्त्ता सात्त्विक उच्यते ।।२६।।

अहंकार, आसिक्त, कर्म के
जेकरा में ना भाव तनिक ।
धैर्यवान, उत्साही जे बा,
सिद्धि; असिद्धि के गम न क्षनिक ।
ऊहे व्यक्ति सात्विक कर्ता ह,
मानऽ एकरा के कौन्तेय !
कहाँ पराजय वड़ुए ओकर ?
ऊ कबहूँओ नइखे जेय ।।२६।।

रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः ।
हर्षशोकान्वितः कर्त्ता राजसः परिकीर्त्तितः ।।२७।।

जेही बाटे लिप्त कर्ममें,
कर्मफल के चाह संयुक्त ।
अउरु लोभी, पर दुखदाता,
आ अशौच से बड़ुए युक्त ।।
हर्ष-शोक के जे अधीन वा
राजसकर्त्ता उहे कहाय ।
एह बात के निश्चिब कइले
बाटे पार्थ ! विवुध समुदाय ।।२७।।

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः ।
विषादी दीर्घसुत्री च कर्ता तामस उच्यते ।।२८।।

जेकर चित्त अशान्त स्वयं बा
जे बा मूढ़, घमण्डी, धूर्त ।
दुसरा के दुख देवे वाला
शोक अउर आलस से पूर्त ।।
जे समय पर काम करे ना
बल्कि टलले रहे ला काम ।
ओह व्यक्ति के जानीं सबनी,
तामसकर्त्ता के दे नाम ।।२८।।

बुद्धे र्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृणु ।
प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनञ्जय ।।२९।।

गुणविभाग के भेद से
प्रज्ञा आउर धैर्य ।
होला तीनि प्रकार के
सुनऽ बटोरि के शौर्य ।।२९।।

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये ।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी ।।३०।।

कर्ममार्ग - संन्यासमार्ग के
जेकरा बड़ुए सुन्दर ज्ञान ।
करणीय, अकरणीय कर्म के
जेकरा बड़ुए समुचित ध्यान ।।
भय-निर्भयता, बन्ध-मोक्ष के
कारन जेकरा पूर्ण विदित ।
ऊहे सात्त्विकी हउए बुद्धि
जानऽ एकरा दे, के चित ।।३०।।

यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च ।
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ ! राजसी ।।३१।।

जवना प्रज्ञा का जरिआ से
जाने व्यक्ति न आपन धर्म ।
अउरू ज्ञानो ना हो पावे
कवन काम वा कइल अधर्म ।।
अथवा कर्म - अकर्मो के जब
कुछुओ ज्ञान न हो पावे
बुद्धि राजसी ऊहे अर्जुन !
विबुधलोग से कहलावे ।।३१।।

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता ।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ।।३२।।

जो अज्ञानयुत अंधकार से
प्रज्ञा सतत रहे आवृत ।

मालुम ना हो अनुचित का बा
अउरू का बा कइल उचित ।।
ओह प्रज्ञा के 'तामस' जनिह
कहल शास्त्र में बा इ बात ।
सुन्दर ज्ञान करावे खातिर
हम बानीं इ कहत हठात ।।३२।।

धृत्या यया धारयते मनः प्राणेन्द्रियक्रियाः ।
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी ।।३३।।

धैर्य जे बा व्याप्त अर्जुन !
योग से संपूर्णतः ।
प्राण, मन, इन्द्रियक्रिया के
जवन रोके पूर्णतः ।।
सात्विकी धृति, धैर्य का ऊ
नाम से विख्यात बा ।
योग्य मानव मात्र खातिर
धैर्य ई प्रख्यात बा ।।३३।।

यया तु धर्मकामार्थान् धृत्या धारयतेऽर्जुन ।
प्रसंगेन फलाकांक्षी धृतिः सा पार्थ राजसी ।।३४।।

११—धैर्य

जवना धृति[११] का जरिए अर्जुन !
मानव बड़ुए लीन सतत ।
धर्म, अर्थ आ काम प्राप्ति में,
आ फल चाहे यथा तुरत ।।
ओह धैर्य के पार्थ ! राजसी
निश्चित कइल विबुध समाज ।

एकरा पर तू वीर धनंजय !
कर गौर निश्चय झट आज ।।३४।।

यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च ।
न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी ।।३५।।

जवना धृति का कारन अर्जुन !
मूढ़ न त्यागे निद्रा भय ।
लिप्त रहे मद, शोक, दुःख में
ऊ तामसी धृति ह निश्चय ।।३५।।

सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ ।
अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति ।।३६।।

तीनि तरह के सुख के वर्णन
सुनि लऽ तू अब हे श्रीकन्त !
जवना के अभ्यासे करते
दुःख अन्त, हो सुखो अनन्त ।।३६।।

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादनम् ।।३७।।

ऊ सुख पहिले विष का अइसन
मालुम होला हे कौन्तेय !
बाकिर फल अमृत का जइसन
होला आगे में सुखदेय ।।
आत्मबुद्धि जबहीं पवित्र हो
ज्ञानप्राप्ति के मार्ग खुले ।

वैराग्य-ध्यान-समाधिलाभ के।
मार्गों साथेसाथ मिले ।।
ज्ञानोदय भइला पर निश्चय
बाह्यवस्तु से हो वैराग्य ।
अइसन भइला पर तऽ ठीके
सुधा सदृश हो सुख, सौभाग्य ।।
स्वयं प्राप्त, अर्जुन तुरन्त में
शोक, दुःख, भय झट बिलगाय ।
अइसन सुख के निश्चय समुझऽ
सात्त्विक सुख ऊ शुद्ध कहाय ।।३७।।

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ।।३८।।

इन्द्रिय आउर विषय मेल से
जे सुख होला झट उपलब्ध ।
अमृत अइसन लागे पहिले,
पीछे विष अइसन प्रारब्ध ।।
एहसे वित्त, विवेक, बुद्धि आ
धैर्य, शक्ति, बल, ओज, स्वरूप ।
सब के होला ह्रास अवश्य में
लगे पाप, हो दूषित रूप ।।
राजस सुख के ई परिभाषा
विबुधविवेचित[१२] वा कौन्तेय !
वास्तविक सुख हेतु अवश्य ई
बड़ए राजस सुख अति हेय ।।३८।।

१२—पण्डित लोग द्वारा निर्णीत

यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः ।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् ॥३९॥

जवना सुख से उत्पन होखे
आलस, नींद, विभ्रम जंजाल ।
आदि अन्त में जे फाँसे ला
आत्मा के अति मोह में डाल ॥
ऊहे कहाला सुख तामसी
मन में लऽ एकरा के धार ।
कथित तीनि प्रकार के ई सुख
विचार योग्य बा बारंबार ॥३९॥

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः ।
सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभि स्यात्त्रिभिर्गुणैः ॥४०॥

पृथवी भा स्वर्गो में अर्जुन !
नइखे केहू देव, मनुष !
जे प्रकृति से उत्पन्न तीनों
गुनवा से बाँचल होखस ॥
त्रिगुनयुक्त माया विकार से
जगती के वा प्रादुर्भाव ।
तब कइसे संभव केहू में
ऐह त्रिगुन के होय अभाव ॥४०॥

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परन्तप ।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ॥४१॥

ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र के
कुलिह कर्तव के निर्धारन ।

गुन विशेषता के अधार पर
कइल बाटे सभ सकारन ।।४१।।

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ।।४२।।

चितनिग्रह, इन्द्रिय दमन
वाह्यान्तर के शुद्धि ।
क्षमा, तपस्या, सरलता
शास्त्रज्ञान समृद्धि ।।
अनुभवज्ञान, आस्तिकता,
स्वाभाविक नव कर्म
ब्राह्मण खातिर नियत बा,
ईहे उनकर धर्म ।।४२।।

शौर्यं तेजो धृतिदक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् ।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ।।४३।।

वीरपना, बल चातुरी,
धैर्य, न युधवैराग्य ।
प्रभुता अउर उदारता
क्षत्रियकर्म, सुभाग्य ।।४३।।

कृषि गौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् ।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ।।४४।।

खेती, गोपालन अउर,
क्रयविक्रय व्यवहार ।

तीनि कर्म ई वैश्य के
कहले सिरजनहार ।।
ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के
सेवा कइले काम ।।
नियत कर्म वा शूद्र के,
१२—व्यावहारिक लौकिक[१२] ललित ललाम ।।४४।।

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धि लभते नरः ।
स्वकर्म निरतः सिद्धि यथा विन्दति तच्छृणु ।।४५।।

जे तत्पर निज कर्म में,
पावे सिद्धि सुजान !
कइसे पावे सिद्धि ऊ
सुनऽ पार्थ दे ध्यान ।।४५।।

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धि विन्दति मानवः ।।४६।।

जेकरा से जग के उत्पत्ति
जेकरा से जग बड़ुए व्याप्त ।
ओही ईश्वर के स्वकर्म से
पूजन से होखे सिद्धि प्राप्त ।
जइसे साध्वी पति के सर्वस
जानि करे तन-मन पूजन ।
ओइसे प्रभु-पूजन से होला, प्राप्त
मनुज का सिद्धि सुमन ! ।।४६।।

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोतिकिल्बिषम् ।।४७।।

पर के उत्तम धर्म से,
आपन बेगुन श्रेष्ठ ।
स्वाभाविक सभ काम के,
कइले पूरे इष्ट ।
जे दूसरा के धर्म के,
करे पार्थ ! स्वीकार ।
ओके लागे पाप अति,
जीवन हो बेकार ॥४७॥

सहजकर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत् ।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृता: ॥४८॥

आपन कारजु हो सदोष जो
तबहूँ चाहीं ना त्यागे के ।
बड़ुए धूआँ दोष आगि में
छोड़ि कहाँ भागे के ?
बिना दोष के काम कवन बा ?
सब में कुछु ना कुछु बा दोष ।
अइसन कवनो धरमो नइखे
जे बाटे बिलकुल निर्दोष !!
क्षत्रियकुल में पैदा हो के
युद्ध कइल बा धर्म तहार ।
अंगीकार परधर्म कइल
कारज बा बिलकुल बेकार ॥
कर्म छोड़ि तू जइबऽ कहँवा,
कर्मे भर तऽ बा अधिकार ।
एह से कर्म करऽ स्वाभाविक
एही खातिर जन्म तहार ॥४८॥

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः ।
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति ॥४९॥

जे वा बिलकुल अनासक्त आ
जे के कुछु खातिर ना चाह ।
जे पवले बा विजय चित्त पऽ
इच्छा जेकर तजलसि राह ॥
अइसन व्यक्ति सांख्ययोग से
पावेला नैष्कर्म्य[13] - सिद्धि ।
आउर प्राप्त करेला अर्जुन !
इहलोक में उच्च प्रसिद्धि ॥४९॥

१४—कर्म से एकदम छुटकारा

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाऽऽप्नोति निबोधये ।
समासेनैव कौन्तेय निष्ठाज्ञानस्य या परा ॥५०॥

वर्णाश्रम धर्मेनुसार तऽ
अपना कर्म के पालन करि ।
कर्मफलेच्छा पूर्ण त्यागि के
परमेश्वर में चित के धरि ॥
नैष्कर्म्यसिद्धि के प्रापित जन
कइसे जाला ब्रह्म के पास ।
ओह ईश्वरीय परा[14] ज्ञान के
सुनऽ संक्षेप में अर्जुन ! खास ॥
एह ज्ञान के परानिष्टा[15] से
बढ़िके नइखे कवनो ज्ञान ।
साक्षात् मोक्ष के प्राप्ति एह से
निश्चय होला तू लऽ जान ॥५१॥

१४—ब्रह्म विद्या

१५—ब्रह्मभाव

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्याऽऽत्मानं नियम्य च ।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च ॥५१॥

विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः ।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः ॥५२॥

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् ।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥५३॥

सात्विक बुद्धियुक्त जे बड़ुए,
जे चित पऽ निग्रह कइले बा ।
शब्द, रूप, रसादि विषयन्हि के
मन से जे बिलकुल तजले बा ॥
राग-द्वेष से बहुत दूर रहि
शून्यवास जेही कइले बा ॥५१॥
अल्पाहारी, आत्मसंयमी,
ध्यानयोग से चित सधले बा
जे वैरागी, गर्व, पराक्रम
अहंकारादि के हँकले बा ॥५२॥
अपनापन के ख्याल छोड़ि के
जे शान्तभाव के गहले बा ।
ऊहे परिव्राजक[१६] संन्यासी
ब्रह्मत्वप्राप्ति के लायक बा ॥
सभ प्रकार से एकमात्र ऊ
मोक्षप्राप्ति के परिचायक बा ॥५३॥

१६—परमहंस, यती

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति ।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥५४॥

जे ब्रह्म में निश्चल चित बा
आनन्दाप्ति में बा तल्लीन ।
ना सोचे कबहीं कुछु खातिर,
कवनो चाह में रहे न लीन ॥
सभके समुझे एके अइसन
सभका सुख - दुख में दे साथ ।
अइसन ज्ञाननिष्ठ व्यक्ति के
परमसिद्धिए लागे हाथ ॥५४॥

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः ।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ॥५५॥

जे भक्ति आ ज्ञाननिष्ठा से
जाने रूप यथार्थ हमार ।
ऊ मानव झट मिलि हमरा में
पावे निज हित में परमार्थ[१७] ॥५५॥

१७ — मोक्ष

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः ।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् ॥५६॥

हमरा आश्रम में जे आ के
करत रहेला सारा काम ।
हमरा अनुकम्पा से अर्जुन !
पावे अविनाशीपद - धाम ॥५६॥

चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः ।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव ॥५७॥

निज मन के सुस्थिर प्रज्ञा से
चहूँ ओरि से करि एकाग्र ।
हमरा के परमेश्वर गुनि के
करि के अर्पित कार्य समग्र[१८] ।।

१८—सभ

चित्त लगवले रहऽ सदा अब
हमरे में तू हे कौन्तेय !
बाल न बाँका होइबो करी
तू ना होइबऽ कबहूँ जेय ।।५७।।

मच्चित्तः सर्व दुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि ।
अथ चेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि ।।५८।।

हमरा में चित लागि रही जब,
हमरे नू अनुकम्पा से ।
दुखरूपी भवसागर तरबऽ
निश्चय तू अविलम्बा से ।।
किन्तु, अहंकार के कारन
जो ना मनबऽ बात हमार ।
निःसन्देह जानऽ तू अर्जुन !
होई सभ विनाश तहार ।।५८।।

यदहंकारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यते ।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति ।।५९।।

अहंभाव के चलते जो तू
कहबऽ कि हम युद्ध करबि ना ।
सदा वृथा ई प्रण हो जाई
जनिहऽ, दुख हम कबो हरबि ना ।।

रजोगुनी प्रकृति तहरा के
निश्चय करि दी अति मजबूर।
युद्ध भूमि में उतरे पड़ीऽ
निश्चय टूटी तब मगरूर ॥५६॥

स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपि तत् ॥६०॥

स्वभावजन्य तू क्षात्र धर्म के
बन्धन में बाड़ऽ आबद्ध।
एह बात के गौर करऽ तू,
१९—विश्वास योग्य बड़ुए ई बिलकुल विश्रब्ध[१९] ॥
ज्ञानहीन हो चाहत नइखऽ
यद्यपि आपन कइल काम।
किन्तु, करे के परिए जाई,
ई ना जाई कथनी वाम ॥६०॥

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढ़ानि मायया ॥६१॥

सभ का उर में बाटे अर्जुन !
परमेश्वर के नू आवास।
२०—चाक संसृतिरूपी चक[२०] पर ईश्वर
करत रहेले सदा निवास ॥
जइसे बाजीगर कठपुतली
तार खींचि के सदा नचाय।
ओइसे अपना माया से प्रभु
सभ प्राणिन्ह के रहत घुमाय ॥६१॥

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ।।६२।।
इतिते ज्ञानमाख्यातं गुह्यागुह्यतरंमया ।
विमृश्यैदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ।।६३।।

सभ प्रकार से अर्जुन ! एह से
परमेश्वर का शरने जा ।
पइबऽ उनका अनुकम्पा से
परम शान्ति, मति तनिक लजा ।
अविनाशी विश्रामो थल तऽ
निश्चय होई प्राप्त सुजान !
हम तऽ कहि देलीं तहरा से
गोपनीयतम जे बा ज्ञान ।।
स्वयं सोच विचार तू करि लऽ
समय न आई बारंबार ।
चाहऽ जइसे तू निबाहि लऽ
अपना इच्छा के अनुसार ।।६२-६३।।

सर्वगुह्यतमं भूयः श्रृणु मे परमं वचः ।
इष्टोऽसि मे दृढ़मिति ततो वक्ष्यामि ते हितम् ।।६४।।

फेनू परम गुप्त बानी तू
सुनि लऽ प्रियवर ! सखा हमार ।
निश्चय जानऽ अब तू अर्जुन !
होई ओ से भला तहार ।।
भले न समुझऽ परी गीता
सार तत्त्व न सूनिलऽ वीर !

अगिला दूनों पद में वर्णित
बड़ुए शुद्ध ज्ञान गंभीर ।।६४।।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ।।६५।।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।।६६।।

हमरा में तू चित्त लगा के
पूजन करऽ सभक्ति हमार ।
अइसन कइले से नू अर्जुन !
होई सुगति अचिर तहार ।।
निश्चय जानऽ परम धाम के
प्रापित क बऽ पृथा कुमार !
हठ करि के दुहरावत बानी
कारन कि तू सखा हमार ।।६५।।
सभ धर्म के त्यागि के अर्जुन !
हमरे शरन में आवऽ तू ।
सब पाप से मोक्ष-मुक्ति के
आइ तुरंते पावऽ तू ।।६६।।

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन ।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति ।।६७।।

जवन ज्ञान कहलीं तहरा से,
नइखे कहे के ओकरा से ।
जे तपहीन, अभक्त, असेवी
व्यक्ति हमार बा, तेकरा से ।।६७।।

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ॥६८॥

एह ज्ञान के परम भक्ति से
जे दी शीख हमरा भक्तन के ।
निःस-देह पहुँच जाई ऊ
हमरा पास करत कीर्तन के ॥६८॥

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः ।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि ॥६९॥

जे उपदेश करे गीता के
उनका से प्रिय अधिक हमार ।
एह भूमि प नइखे अर्जुन !
कर्म करे वाला हुशियार ॥३९॥

अध्येष्यते च इमं धर्म्यं संवादमावयोः ।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः ॥७०॥

हमरा तहरा बीच भइल इ
पढ़ी जेह वार्त्तालाप ।
ज्ञानयज्ञ से पूजी हमके
बा हमार इ शुद्धालाप ॥७०॥

श्रद्धावाननसूयश्च श्रृणुयादपि यो नरः ।
सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्य कर्मणाम् ॥७१॥

द्वेष रहित होके, श्रद्धा से
जे गीता के श्रवण करी ।

मोक्ष प्राप्त ऊहो करि जाई
शुभ जगती में पुण्यकरी ।।७१।।

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा ।
कच्चिदज्ञानसंमोहः प्रनष्टस्ते धनञ्जय ।।७२।।

जे उपदेश देलीं अबगे हम
ऊ ध्यान लगा सुनलऽ कि ना ।
अज्ञानजनित भ्रांति अबहीं तक
दूर पूर्णत: भइल कि ना ।। ?
ठीक ठीक बतलावऽ अर्जुन !
कुछ संकोच करऽ मति कबहीं !
जो कठिनाई कबहूँ होई
दूरि करबि हम मित्र अबहीं ।।७२।।

अर्जुन उवाच

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा, त्वत्प्रसादान्मयाऽच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव ।।७३।।

वचन सुनि भगवान के,
कहले पृथा कुमार ।
प्रभुजी रउरा छोह से
भइल दूरि भ्रमतार[२१] ।।
सुन्दर बुधि पवलीं प्रभो, !
अब हम निश्चल, शान्त ।
संशयगत हम पूर्ण अब,
करबि कहल श्रीकान्त ! ।।७३।।

२१—भ्रमके क्रम भा सिलसिला

संजय उवाच

इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः ।
संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम् ।।७४।।

कृष्णार्जुन के बात सुनि,
कहले संजय वीर ।
उक्त कथन के सूनि के
राजन् ! भइलीं धीर ।
सुन्दर वाणी से परम !
गदगद चित्त हमार ।
रोम रोम पुलकित भइल,
लखि तन दुहुँ उजियार ।।७४।।

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद् गुह्यमहं परम् ।
योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम् ।।७५।।

कृपा व्यास जी के अधिक
सुनलीं योग विशिष्ठ ।
योगेश्वर भगवान् के
मुखनिःसृत वच शिष्ठ ।।७५।।

राजन् संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिमभद्भुतम् ।
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः ।।७६।।
तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः ।
विस्मयो मे महान् राजन् हृष्यामि च पुनः पुनः ।।७७।।

केशव - अर्जुन के विचित्र आ
शुद्धालाप[२३] के स्मृति हरदम ।

२३—पवित्र कथोपकथन

मानस पट पर उतरि उतरि के ।
करत चित्त आनन्द एकदम ।।७६।।
हर क्षण हरि के विश्वरूप के
स्मृति होत रहला का कारन ।
अति आश्चर्य होत बा प्रतिक्षन
हर्षित चित बा हँसत सकारन ।।७७।।

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ।।७८।।

जहाँ कृष्ण योगेश्वर रहिहें,
जहाँ धनुषधारी अर्जुन !
उहाँ राजलक्ष्मी - जय - वैभव
आउर न्याय के समंजन ।।
ऐहसे रउरा सुवन सुयोधन
के ना जीति होई जानीं ।
उनका जय के आशा राजन्
त्यागि दिहीं, अब त मानीं ।।७८।।

हरिः ॐ तत्सत्, हरिः ॐ तत्सत्,
हरिः ॐ तत्सत् ।।

—::०::—

अनुवादक के संक्षिप्त इतिवृत्त

जन्म—कार्तिक कृष्ण पंचमी बुधवार विक्रम संवत् १९६५ तदनुसार १४ अक्तूबर, १९०८ ई०। ग्राम बिलौटी, थाना शाहपुरपट्टी, जिला भोजपुर।

शिक्षा—प्रारम्भिक जन्मभूमि में। बाद में पटना, कलकत्ता में।

पेशा—सरकारी नौकरी १५ सितम्बर १९२९ से ९-११-४२ तक। फेनु ७-१२-१९४३ से ३०-४-१९४८ तक। १९४२ का असहयोग आन्दोलन में भाग लेला का कारण १९-१०-१९४२ से ६-१२-१९४३ तक सरकारी आदेशानुसार नौकरी से च्युत।

सम्पादन—'दीपशिखा' हिन्दी मासिक पत्रिका १९४८ ई० में, आ सहकारिता विभागीय मासिक पत्रिका 'सहयोग' १९५३-५४ में।

लेखन—(i) प्रकाशित पुस्तक :—(१) अर्जुन विजय (किरातार्जुनीयम् के पहिला चारि सर्ग के अनुवाद हिन्दी पद्य में १९४४ ई०), (२) छन्दोदीपिका (संस्कृत आ हिन्दी पद्य में १९४६ ई०), (३) सहकारिता एक अध्ययन (हिन्दी लेख, स्वर्णपदक प्राप्त, १९४७ में), (४) कार्यालय कर्मचारी शब्दकोष (गुटका अंग्रेजी-हिन्दी में १९४८ ई०), (५) बिहार सहयोग समितियाँ विधान (हिन्दी अनुवाद, १९४९ ई०) (६) बिहार कॉपरेटिव सोसाइटीज ऐक्ट (अनुवाद १९५१ ई०), (७) कार्यालय शब्दकोष (अंग्रेजी-हिन्दी १९५७ ई० में, (८) प्रबन्ध काव्य प्रतिकार' (१९५८ ई०), ९) भोजपुरी प्रबन्ध काव्य (सत्यनिष्ठ हरिश्चन्द्र' (१९७१ ई०), (१०) श्री भगवद्गीता (भोजपुरी में पद्यानुवाद सम्पूर्ण १९७७ में)।

(ii) अप्रकाशित :—(१) कवि कालिदासकृत मेघदूतम् के हिन्दी अनुवाद मन्द्राक्रान्ता छन्द में (संस्कृत आ हिन्दी में विशद व्याख्या सहित, १९४६ ई० अउर भोजपुरी में अनुवाद १९७७ में), (२) [illegible] वध (हिन्दी पद्य में, १९५० ई०), (५) पुष्पवन्त कथा हिन्दी पद्य में १९७४), (६) पातञ्जलि योगदर्शन के अनुवाद हिन्दी पद्य में १९-७५ ई० में, (७) दुर्गा सप्तशती अनुवाद हिन्दी पद्य में १९७६ ई० अउर भोजपुरी पद्य में, १९७६ ई०), (८) हिन्दू विवाह विधान

(हिन्दी अनुवाद) १९७५ ई०, (९) सत्यनारायण व्रत कथा (अनुवाद हिन्दी पद्य में, १९७५) (१०) अनन्त व्रत कथा (अनुवाद हिन्दी पद्य में १९७५ ई०), (११) जन्माष्टमी व्रत कथा (अनुवाद हिन्दी पद्य में १९७५ ई०) (१२) सूर्यषष्टी व्रत कथा (हिन्दी पद्यानुवाद, १९७५ ई०) (१३) हरितालिका (तीज) व्रत कथा (हिन्दी पद्यानुवाद, १९७५ ई०) (१४) जीवत्पुत्रिका व्रत कथा (हिन्दी पद्य में १९७५), (१५) बहुरा व्रत कथा (हिन्दी पद्य में १९७५), (१६) ऋषिपंचमी (हिन्दी पद्य में १९७५), (१७) चारि कथा (तीज, जीउतिया, बहुरा, ऋषिपंचमी भोजपुरी पद्य में १९७६ ई० (१८) सत्यनिष्ठ हरिश्चन्द्र नाटक (भोजपुरी भाषा में १९७६), (१९) शकुन्तला नाटक (भोजपुरी भाषा में १९७६ में)।

अन्तिम दूनों पुस्तक तथा मेघदूतम् के कथित हिन्दी अउर भोजपुरी अनुवाद प्रेस में मुद्रण हेतु प्रस्तुत बा।

१९४४ ई० से १९७५ तक संस्कृत आ हिन्दी साहित्य का भंडार में योगदान। जनवरी १९७६ से मातृभाषा 'भोजपुरी' का सेवा में तल्लीन।

—उषा त्रिपाठी, बी० ए० (ऑनर्स)

—:०:—

लेखक

कवि के नीचे लिखल कृति प्रकाशनाधीन

१. मेघदूत (मूल संस्कृत श्लोकन का साथ हिन्दी आ भोजपुरी पद्यानुवाद)

२. चारि-कथा (तीजि, जीवत्पुत्रिका, बहुला आ ऋषिपंचमी के मूल श्लोकन का साथ भोजपुरी में पद्यानुवाद)

३. शकुन्तला (भोजपुरी - नाटक)

४. हरिश्चन्द्र (भोजपुरी - नाटक)